भारतीय समाज में ग्रामीण शिक्षा का विकास

डा0 शक्ति सिंह
एसोसिएट प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग
गनपत सहाय पी0जी0 कालेज, सुलतानपुर (उ0प्र0)

ग्रामीण संरचना से सम्बद्ध शिक्षा एक ऐसी व्यवस्था है जो व्यक्ति के रचनात्मक प्रवृत्ति का सृजन करती है साथ ही समूहों के बीच एकीकरण की प्रक्रिया को भी प्रोत्साहन देती है। शिक्षा का कार्य व्यक्ति के अनुभव तथा विवेक में वृद्धि करके उसमें समायोजन की क्षमता का विकास करना है। यहीं कारण है कि सभ्यता के आरम्भिक युग से लेकर आज तक सभी समुदायों में समयानुकूल प्रणाली की सहायता से वैयक्तिक विकास किया जाता रहा। भारत के ग्रामीण जीवन में शिक्षा अपने विशेष स्वरूप को बनाये रखकर ग्रामीण संस्कृत को संरक्षण प्रदान किया और परिवर्तन के वर्तमान युग में आज भी अपनी विशिष्टता को बनाये हुए है। इस सम्बन्ध में यह ध्यान रखना आवश्यक है कि शिक्षा का तात्पर्य केवल पुस्तकीय ज्ञान से ही नहीं होता है बल्कि समाज की विभिन्न संस्थाएं अपने संचित अनुभवों के आधार जो व्यावहारिक ज्ञान व्यक्ति को प्रदान करती रही हैं, उनका भी शिक्षा में उतना ही महत्वपूर्ण स्थान है। इसी आधार पर –बी0एस0 फिलिप्स का कथन है, "शिक्षा वह संस्था है जिसका केन्द्रीय तत्व ज्ञान का संग्रह है।"

भारत में प्राचीनकाल से विद्या को सर्वोत्तम धन माना गया है। विद्या धन को न तो कोई चुरा सकता है और न कोई खो सकता है। विद्या धन देने पर कम नहीं होता बल्कि बढ़ता है। इतिहास गवाह है कि हजारों साल पहले विज्ञान और चिकित्सा के जो मानदण्ड स्थापित हुए है उसी के कारण उसे विश्वगुरू का दर्जा मिला है। दुभाग्यवश अपनी ही गलती के कारण फिर हजारों वर्षों की गुलामी में बिताने पड़े। स्वतंत्रता पश्चात् हमारे संविधान में यह व्यवस्था बनी कि दस वर्षों के भीतर 14 वर्ष तक की आयु के बच्चों को अनिवार्य व निःशुल्क शिक्षा प्राप्त हो। इसके अलावा छोटे बच्चों–छः वर्ष से कम आयु के बच्चों की समुचित देखभाल और 2015 तक सभी बच्चों विशेष रूप से लड़कियों को शिक्षा उपलब्ध कराने का फैसला किया गया। सरकार द्वारा शिक्षा को बढ़ावा दिये जाने के बावजूद गांवों के विकास के लिए बड़े स्तर पर कार्य योजना बनाने की आवश्यकता है। अशिक्षितों को इस तरह की शिक्षा दी जानी चाहिये कि उसे किसी भी स्तर पर दूसरों का सहारा न लेना पड़े। देश के अधिकांश गांवो में आज भी बेरोजगारी, कुपोषण, गरीबी, असमानता और दूसरी अनेक बुराइयां बड़े पैमाने पर व्याप्त हैं। जिस तरह से जनसंख्या वृद्धि हो रही है उसे देखते हुए केन्द्र व राज्य सरकारों को शिक्षा प्रणाली और योजनाओं पर नये सिरे से विचार करना चाहिये। गांवों में विकास का स्तर तेजी से न बढ़ने का कारण अशिक्षा के अलावा परम्परागत सोच भी है। यह सोच गांवो के विकास को हर स्तर पर बाधित करती है। इस पर भी केन्द्र और राज्य सरकारों को सोचना चाहिए। महज बुनियादी शिक्षा और अक्षर ज्ञान हो जाने से गांवो का हर स्तर पर विकास संभव नहीं है। शिक्षा पर किए जाने वाले खर्च का सही उपयोग तो होना ही चाहिए।

गांव में आज भी लगभग 90 प्रतिशत लोग कृषि पर आश्रित है। इसे ध्यान में लाकर ही सरकार को शिक्षा की योजनाएं बनानी चाहिए। तभी सरकार द्वारा आवंटित धन का उचित उपयोग हो सकता है। कृषि संस्कृति की अपनी अलग पहचान और मूल्य है। हर स्तर पर यह शहरों से भिन्न है। यह सारी बाते शिक्षा से जुड़ी हैं। बच्चों को किस तरह से प्राथमिक शिक्षा देनी चाहिए, इस पर ध्यान देकर ही देश के हर बच्चे को साक्षर और जागरूक बनाया जा सकता है। इसी तरह प्रौढ़ और महिलाओं के विषय में भी कार्य योजना

बनाई जानी चाहिए। गांव का विकास तभी होगा जब सभी आयु वर्ग के लोग पूरी तरह शिक्षित और जागरूक होंगे। यह बात केवल देश के अर्थशास्त्री ही नहीं कर रहें हैं, बल्कि विदेश के कृषि विशेषज्ञ भी कर रहें हैं जो वर्षों से भारत के गांव पर शोध कर रहें हैं।

गांवो में शिक्षा का अलख जगाने के लिए जैसी योजना और कार्य पद्धति मध्य प्रदेश और केरल ने अपनाई वह देश के दूसरें राज्यों के लिए एक मिसाल ही है। मध्य प्रदेश में रात्रि कालीन कक्षाएं चलाकर उन ग्रामीण बच्चों को भी शिक्षा दी जा रही है, जो अत्यन्त निर्धन परिवार के होने के कारण दिन भर श्रम करते हैं या खेती के कार्य में लगे रहते हैं लेकिन रात्रि में पढ़ने के लिए राज्य ग्रामीण शिक्षा योजना के तहत चलने वाली कक्षाओं में पढ़ते है। मतलब जहां चाह वहां राह की कहावत यहां पूरी तरह चरितार्थ होती दिखाई पड़ रही है।

भारत में ग्रामीण शिक्षा का ऐतिहासिक विश्लेषण करने के लिए डॉ0 ए0आर0 देशाई ने उसे तीन भागो में विभक्त करके स्पष्ट किया है (1) पूर्व ब्रिटिश काल में शिक्षा (2) ब्रिटिश काल में शिक्षा तथा (3) स्वतन्त्र भारत में शिक्षा। ब्रिटिश शासन से पूर्व शिक्षा का स्वरूप एक ऐसी अर्थ व्यवस्था से सम्बन्धित था जो केवल जीवन की अनिवार्य आवश्यकताओं को पूरा करने में सहायक था। परिवार के अनुभवी और वयोवृद्ध सदस्यों द्वारा ही परिवार के सदस्यों को यह ज्ञान प्रदान किया जाता था। इसका प्रमुख उद्देश्य परम्परागत संस्कृति के सन्दर्भ में व्यक्तित्व का विकास करना था। ब्रिटिश काल में प्राचीन शिक्षा के स्थान पर एक धर्म–निरपेक्ष एवं उदारवादी आधुनिक शिक्षा का प्रसार हुआ परिणामस्वरूप पश्चिमी संस्कृति का विकास हुआ और लोग इसको आत्मसाव करने लगे। इस शिक्षा को ग्रहण करने वाले व्यक्ति को न केवल सरकारी नौकरियों में प्राथमिकता मिली बल्कि सामाजिक प्रस्थितियॉ में भी अन्य लोगों से उच्च समझी जाने लगा। स्वतंत्रता के पश्चात् भारत में शिक्षा के विकास पर विशेष ध्यान दिया गया इसका मुख्य उद्देश्य सभी ग्रामीण तथा नगरी क्षेत्रों में एक नवीन चेतना का विकास करना तथा राष्ट्र निर्माण में ग्रामीणों का सक्रीय सहयोग प्राप्त करना था। भारत में आज प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य कर दिया गया है।

मानव संसाधन के पूर्ण विकास के लिए 1986 में राष्ट्रीय शिक्षा नीति की घोषणा की गई। इसमें 1992 में कुछ परिवर्तन किए गए। परिवर्तनों के बाद 14 वर्ष तक के सभी बच्चों को 21वीं सदी के प्रारंभ से पहले अनिवार्य और निःशुल्क शिक्षा सुलभ कराने और सकल घरेलू उत्पाद का 6 प्रतिशत शिक्षा पर खर्च करने का वचन दिया गया। इसके अलावा शिक्षा की गुणवत्ता में उल्लेखनीय सुधार लाने पर जोर दिया गया। जिससे कि छात्र प्राथमिक स्कूल छोड़ते समय शिक्षा का आवश्यक स्तर प्राप्त कर ले। राष्ट्रीय शिक्षा नीति में इस बात को स्वीकार किया गया कि सामाजिक एवं क्षेत्रीय विषमता को दूर करने, स्त्री पुरूषों के बीच की खाई को पाटने और पिछड़ो एवं अल्प संख्यकों को उचित स्थान दिलाने में शिक्षा की महत्वपूर्ण भूमिका है। देश सभी के लिए शिक्षा के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए वचनबद्ध है। उसकी वचनबद्ध का प्रमाण यह है कि शिक्षा के लिए राष्ट्रीय बजट में निरंतर वृद्धि की जा रही है। 1950–51 में राष्ट्रीय बजट में शिक्षा का हिस्सा 0.68 प्रतिशत था जो 2002–03 में बढ़कर 4.2 प्रतिशत हो गया। दसवीं योजना के अन्त तक यानी 2007 तक इसे 6 प्रतिशत तक पहुँचाने का प्रयत्न किया गया।

भारत ने छह वर्ष से छोटे बच्चों की स्वास्थ्य रक्षा, पौष्टिक आहार और स्कूल पूर्व शिक्षा की व्यवस्था करने के लिए 1975 में समन्वित बाल विकास सेवाएं शुरू की। इस परियोजना के अन्तर्गत क्षेत्र के छह वर्ष के छोटे बच्चे प्रतिदिन आंगनबाड़ी में खेलकूद, मनोविनोद तथा अन्य दिलचस्प गतिविधियों में तीन घंटे बिताते है। यहां समय≤ पर उनके स्वास्थ्य की जांच की जाती है, उन्हें बीमारियों से बचाने के लिए टीके

लगाए जाते हैं, उन्हें सहायक (पौष्टिक) आहार दिया जाता है और उन्हें स्कूल जाने के लिए तैयार किया जाता है।

जोमटीन और डाकर घोषणाओं तथा राज्य के नीति के निदेशक तत्वों के संबंध में अपने दायित्व को पूरा करने और देश के करोड़ों बच्चों को अनिवार्य निःशुल्क शिक्षा उपलब्ध कराने के लिए सरकार ने 2002 में संविधान में 86वां संशोधन किया। इसके अन्तर्गत 6 से 11 वर्ष तक के सभी बच्चों को बिना किसी कठिनाई या बाधा के शिक्षा सुविधा मिले। इसलिए इस अधिकार को मूल अधिकार बना दिया गया है। इसे अनुच्छेद के अनुसार राज्य कानून द्वारा अधिकार ही नहीं दिया बल्कि संविधान में एक नया अनुच्छेद 21 ए जोड़ दिया गया हैं, जिसके अनुसार राज्य कानून द्वारा निर्धारित ढंग से छः से चौदह वर्ष की आयु के सभी बच्चों को निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा प्रदान करेगा।

देश में अनिवार्य निःशुल्क प्राथमिक शिक्षा शुरू करना एक महान और जटिल कार्य था। इसके लिए काफी संसाधनो की जरूरत थी। सरकार ने इस समस्या को हल करने के लिए 8.7.2004 से आय कर, उत्पादन शुल्क और सेवा कर पर 2 प्रतिशत शिक्षा अधिभार लगा दिया। आज यह शिक्षा अधिभार 3 प्रतिशत है। इस अधिभार से प्राप्त समस्त राशि एक विशेष कोष–प्राथमिक शिक्षा कोष पीएसके में जमा कर दी जाती है। इस कोष में जमा राशि का उपयोग सर्व शिक्षा अभियान और बच्चों को दोपहर का भोजन देने के अतिरिक्त किसी अन्य मद में नहीं किया जा सकता है। वित्त मंत्रालय के अनुसार शिक्षा अधिभार के रूप में 2004–05 में 43318.51 करोड़ रू0 2005–06 में 7637.75 करोड़ रू0 और 2006–07 में लगभग 6833 करोड़ रू0 एकत्र हुए थे। शिक्षा अधिभार लगने से प्राथमिक शिक्षा के लिए संसाधनों में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है।

संशोधन अनुमानों के अनुसार 2004–05 में इस पद में 5010 करोड़ रू0 प्राप्त हुए। बजट अनुमानों के अनुसार 2007–08 में इस मद में लगभग 10.393 करोड़ रू0 प्राप्त हुए।

इसी के साथ सरकार ने सभी के लिए शिक्षा की एक बड़ी योजना बनाई है। जिसमें समाज के सभी वर्ग बच्चों किशोरों वयस्कों सभी को शिक्षित करने की व्यवस्था है।

संविधान में 86वां संशोधन पारित होने से पूर्व सरकार ने उसकी तैयारी के रूप में 2001–02 में शिक्षा का एक विशाल कार्यक्रम सर्व शिक्षा अभियान शुरू किया। इस अभियान के अन्तर्गत अगले तीन–चार वर्षों के दौरान 6 से 14 वर्ष के सभी बच्चों को पाठशालाओं में दाखिला दे दिया गया। इस अभियान को शुरू करते समय ग्रामीण शिक्षा के क्षेत्र में कार्य करने वाले स्वयं सेवी संगठनों, शिक्षा कर्मी और लोक जुम्बिश के अनुभवों को ध्यान में रखा गया।

सर्व शिक्षा अभियान का उद्देश्य हर बच्चे के लिए उसकी विशेष आवश्यकता के अनुसार उपयुक्त वातावरण में शिक्षा की व्यवस्था करना है। इस स्कीम में विकलांगता से पीड़ित बच्चों को यथासंभव सामान्य स्कूल में शिक्षा दी जाती है।

सर्व शिक्षा अभियान समूचे देश में क्रियांवित किया जा रहा है। अभियान के अन्तर्गत सभी निजी कार्य योजनाएं 2004–05 में मंजूर की गई थी। इस कार्यक्रम के अन्तर्गत नये स्कूल खोले जाते है, वर्तमान स्कूलों में अतिरिक्त कमरे बनाए जाते है। पुराने शौचालयों की मरम्मत एवं अतिरिक्त शौचालयों, पानी पीने की उपयुक्त व्यवस्था, प्रतिदिन प्राध्यापकों की नियुक्ति बढ़ाई जा रही है। स्कूलों को बेहतर शिक्षण और ज्ञान प्राप्त करने की सामग्री भी दी जा रही है।

प्रारम्भिक स्तर पर लड़कियों की शिक्षा के लिए राष्ट्रीय कार्यक्रम–यह सर्व शिक्षा अभियान का महत्वपूर्ण हिस्सा है। इसका उद्देश्य इस अभियान को अतिरिक्त समर्थन प्रदान करना है। यह कार्यक्रम देश के शैक्षिक दृष्टि से पिछड़े क्षेत्रों की लड़कियों की शिक्षा को बढ़ावा देने के विशेष प्रयास करता है।

स्टार्क ने अपनी पुस्तक 'ज्ञान का समाजशास्त्र' मे ज्ञान की सामाजिक व्याख्या पर बल दिया है'' जिस समाज में हम जन्म लेते है वह कुछ मान्यताएं या मूल्य या दिशाएँ प्रदान करता है, और अवलोकन करते समय इन्हीं के आधार पर ज्ञान प्राप्त करते है। यदि इस आधार हीन हो तो हमें ज्ञान नही प्राप्त होगा, केवल संवेदनाएं ही होंगी। हर ज्ञान का आधार हमारे मन का प्रागनुभव तन्त्र है, यदि हमारे पास यह न हो, तो अव्यवस्थित दृष्टिगोचर होगा।''

शिक्षा गांधी बालिका विद्यालय योजना–सहयोजना 2004–05 में शुरू की गई। इसके अन्तर्गत शैक्षिक दृष्टि से पिछड़े खंडों में लड़कियों के 75 स्कूल खोलने का लक्ष्य था।

शिक्षा गारंटी स्कीम और वैकल्पिक एवं परिवर्तित शिक्षा स्कीम–यह स्कीम उन बच्चों के लिए है जो ऐसे क्षेत्रों में रहते हैं जहां स्कूल नहीं है अथवा जो विकलांगता या अन्य किसी कारणों से स्कूल नहीं जा सकते हैं। इस स्कीम के अन्तर्गत शिक्षण की लचीली रणनीतियां बनाई जाती है। सर्व शिक्षा अभियान के कारण शिक्षा के प्रति लोगों की जागरूकता बढ़ी है। अब अधिकाधिक लोग अपने बच्चो को स्कूल भेज रहे है। स्कूल छोड़ने वाले बच्चों की संख्या ने कमी आई है। प्राथमिक स्कूलों में न केवल शिक्षा मुक्त है बल्कि छात्रों को दोपहर का भोजन भी दिया जाता है। इसके अलावा प्रतिभा सम्पन्न और जरूरत मंद छात्रों को छात्रवृत्तियां दी जाती है। सभी लड़कियों और अ.जा. एवं अ.ज.जा. के सदस्यों को पाठ्य पुस्तके मुफ्त दी जाती है।

बचपन में आर्थिक या अन्य कारणों से शिक्षा प्राप्त करने में वंचित रहे लोगों के लिए सम्पूर्ण देश में साक्षरता अभियान चलाया जा रहा है। इस अभियान ने अब एब जन आन्दोलन का रूप ले लिया है। इसमें हजारों स्वयं सेवक, गैर सरकारी संगठन और राज्य सरकारों के अधिकारी और कर्मचारी भाग ले रहे हैं।

स्टार्क ने अपनी पुस्तक 'ज्ञान का समाजशास्त्र' में ज्ञान की, सामाजिक व्याख्या पर बल दिया है। ''जिस समाज में हम जन्म लेते है वह कुछ मान्यताएं या मूल्य या दिशाएँ प्रदान करता है, और अवलोकन करते समय इन्हीं के आधार पर ज्ञान प्राप्त करते है। यदि यह आधार ही न हो तो हमें ज्ञान नही प्राप्त होगा, केवल संवेदनाएं ही होंगी। हर ज्ञान का आधार हमारे मन का प्रागनुभव तन्त्र है, यदि हमारे पास यह न हो, तो अव्यवस्थित दृष्टिगोचर होगा।''

प्रत्येक राष्ट्र और प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में ग्रामीण शिक्षा प्रथम अनिवार्यता की वस्तु है। यह पहली सीढ़ी है जिसे सफलतापूर्वक पार कर के ही कोई राष्ट्र अपने अभीष्ट लक्ष्य तक पहुंचता है। कहा जाता है कि राष्ट्रीय जीवन के साथ जितना घनिष्ठ संबंध ग्रामीण शिक्षा का है उतना माध्यमिक या उच्च शिक्षा का नही है। ग्रामीण शिक्षा का राष्ट्रीय विचारधारा और चरित्र निर्माण में बहुत योगदान है। ग्रामीण शिक्षा का संबंध किसी विशेष वर्ग या व्यक्ति से नहीं बल्कि सम्पूर्ण जनसंख्या से है। इसका हर कदम पर हर व्यक्ति के जीवन से सम्पर्क होता है। ग्रामीण शिक्षा राष्ट्र प्रगति का मूल आधार है। यदि ग्रामीण शिक्षा की अवहेलना हुई तो भारत का पतन निश्चित है। इसी संबंध में स्वामी विवेकानन्द ने कहा है ''मेरे विचार से जनसाधारण की अवहेलना महान राष्ट्रीय पाप है और हमारे पतन के कारणों में से एक है। सब राजनीति उस समय तक विफल रहेगी जब तक कि भारत में जन साधारण को एक बार भली प्रकार शिक्षित नहीं कर लिया जायेगा।''

भारत में ग्रामीण शिक्षा से सम्बन्धित समस्याओं के लिए समय≤ पर अनेक योजनाएँ प्रस्तुत की जाती रही हैं। इनका उद्देश्य ब्रिटिश कालीन शिक्षा से उत्पन्न ग्रामीण विषमताओं के प्रभाव को कम करना तथा ग्रामीण आवश्यकताओं के अनुकूल शिक्षा की व्यवस्था करना था। स्वतंत्रता आन्दोलन के अन्तर्गत शिक्षा में सुधार की मांग भी उठने लगी। इस स्थिति में गांधी जी ने सर्वप्रथम 1938 में वर्धा योजना प्रस्तुत की, जिसके अन्तर्गत ग्रामीण शिक्षा को नवीन स्वरूप देनें का प्रयत्न किया गया। अतः महात्मा गाधी ने इस शिक्षा को

बुनियादी शिक्षा का नाम दिया। बुनियादी शिक्षा प्रणाली है जिसके अन्तर्गत बच्चों के बौद्धिक विकास के साथ ही शारीरिक विकास को भी महत्व दिया जाता है यह शिक्षा इस सिद्धान्त पर आधारित है कि छात्र को शब्द ज्ञान तथा सैद्धान्तिक ज्ञान के साथ–साथ व्यावसायिक ज्ञान भी दिया जाना चाहिए जिससे वह श्रम के महत्व को समझकर आर्थिक जीवन में आत्म निर्भर बनने में सफल हो सके।

इसको ध्यान में रखते हुए उद्देश्यहीन शिक्षा तथा दिन प्रतिदिन बढ़ती हुई बेरोजगारी को देखते हुए अब अनेक नियोजनकर्ता यह अनुभव करने लगे हैं कि बुनियादी शिक्षा के सिद्धान्तों को मानते हुए इसकी संरचना में कुछ सुधार करके ग्रामीण जीवन के लिए इसे अधिक उपयुक्त बनाया जा सकता है। इसी दृष्टिकोण को लेकर वर्तमान नियोजन के अन्तर्गत ग्रामीण शिक्षा को नवीन स्वरूप देनें का प्रयत्न किया जा रहा है।

सन्दर्भ–ग्रन्थ

1. B.S. Phillips, Sociology, Social Structure and Change, P. 306.
2. A.R. Desai, Rural Sociology in India P. 70.
3. डॉ0 जी0के0 अग्रवाल एवं डॉ0 एस0एस0 पाण्डेय, Rural Socialogy. (2003)
4. योजना
5. राम बिहारी सिंह, तोमर समाजशास्त्रीय निबन्ध
6. S.C. Bube, Social Structure and Communities, in Rural Socialogy in India.
7. W. Stark, The socialogy Knowledge, P. 105.

भारतीय महिलाओं की अतीत और वर्तमान स्थिति का एक समाजशास्त्रीय अवलोकन

डा0 आलोक कुमार कश्यप
एसोसिएट प्रोफेसर, समाज शास्त्र विभाग,
महाराज बलवन्त सिंह पी0 जी0 कालेज,
गंगापुर, वाराणसी, उ0प्र0

जयन्त गुप्ता
असिस्टेन्ट प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग
बी0 डी0 एस0 पी0 महिला महाविद्यालय,
खोचवां, वाराणसी, उ0प्र0

महिलाओं की सामाजिक स्थिति के अध्ययन से पता चलता है कि प्राचीन काल से आधुनिक काल तक महिलाओं की स्थिति एक समान नहीं रही है। उनकी स्थिति में अनेक उतार–चढ़ाव आते रहे है तथा उनके अधिकारों में भी बदलाव होते रहे है। परन्तु उनकी स्थिति में उस स्तर पर संतोषजनक सुधार देखने को नहीं मिलते है। वैदिक युग में उनकी स्थिति सुदृढ़, पारिवारिक व सामाजिक स्तर पर सम्मान जनक थी। उन्हे शिक्षा व सम्पत्ति का अधिकार प्राप्त था किन्तु ऋगवेद के कुछ विवरणों से स्पष्ट होता है कि स्त्री को कुछ जगहों पर समानता के अधिकार से वंचित रखा गया। फिर भी हिन्दू धर्म में उन्हें आदर व सम्मान दिया गया है किन्तु यह सभी जाति, धर्म, सम्प्रदाय पर लागू नहीं होता था। यद्यपि भारत में महिलाओं की स्थिति में पिछले कुछ वर्षों में कई बड़े बदलाव देखने को मिले है। प्राचीन काल में पुरुषों के साथ बराबरी की स्थिति से लेकर मध्ययुगीन काल के निम्न स्तरीय जीवन और साथ ही कई सुधारकों द्वारा समान अधिकारों को बढ़ावा दिए जाने तक, भारत में महिलाओं का इतिहास काफी गतिशील रहा है। आधुनिक भारत में महिलाएं राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री, मुख्यमन्त्री, लोकसभा अध्यक्ष, ,प्रतिपक्ष की नेता आदि जैसे शीर्ष पदों पर आसीन हुई हैं।

मुख्य शब्द– महिलाओं, आधुनिकता, लैंगिक भेदभावों, घरेलू हिंसा अशिक्षा, कुपोषण, दहेज उत्पीड़न, कन्या भ्रूणहत्या इत्यादि।

आज आजादी के सत्तर सालों बाद भी भारत में महिलाओं की स्थिति संतोषजनक नही कही जा सकती। आधुनिकता के विस्तार के साथ–साथ देश में दिन– प्रतिदिन बढ़ते महिलाओं के प्रति अपराधों की संख्या के आंकड़े चौकाने वाले हैं। उन्हें आज भी कई प्रकार के धार्मिक रीति–रिवाजों, कुत्सित रूढ़ियों, यौन अपराधों, लैंगिक भेदभावों, घरेलू हिंसा, निम्नस्तरीय जीवनशैली, अशिक्षा, कुपोषण, दहेज उत्पीड़न, कन्या भ्रूणहत्या, सामाजिक असुरक्षा, तथा उपेक्षा का शिकार होना पड़ रहा है। हालांकि पिछले कुछ दशकों में रक्षा और प्रशासन सहित लगभग सभी सरकारी तथा गैर–सरकारी क्षेत्रों में महिलाओं की बढ़ती भागीदारी, उनकी स्वायत्तता तथा अधिकारों का कानूनी एवं राजनैतिक संरक्षण, तेजी से बदलते सकारात्मक सामाजिक नज़रिये, सुधरते शैक्षणिक स्तर, अंतर्राष्ट्रीय खेल प्रतिस्पर्धाओं में उनकी प्रतिभागिता एवं कौशल तथा सिनेमा, रचनात्मकता, व्यापार, संचार, विज्ञान तथा तकनीकि जैसे महत्त्वपूर्ण क्षेत्रों में कई बड़े बदलाव भी देखने को सामने आये हैं। लेकिन यह महज शुरुआत भर है। जब तक समाज के प्रत्येक वर्ग में महिलाओं की पुरुषों के बराबर भागीदरी सुनिश्चित नहीं हो जाती, वे हर प्रकार से शिक्षित, सुरक्षित तथा संरक्षित नही हो जातीं, तब तक हमारी आजादी अधूरी मानी जायेगी।

कहा जाता है कि– वैदिक युग में स्त्रियों को पुरुषों के बराबर अधिकार प्राप्त थे। उन्हें यज्ञों में सम्मिलित होने, वेदों का पाठ करने तथा शिक्षा हासिल करने की आजादी थी। ऋग्वेद और उपनिषद गार्गी, अपाला, घोषा, मैत्रेयी जैसी कई महिला विदुषियों के बारे में जानकारी प्रदान करते हैं। जैसा कि प्राचीन भारत में कहा जाता रहा है– यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवता। अर्थात् जहां स्त्रियों का सम्मान होता है, वहां देवता निवास करते हैं। स्मृतियों नें (खासकर मनुस्मृति) स्त्रियों पर पाबंदियां लगाना शुरु किया। यहीं से महिलाओं की स्थिति में गिरावट आना शुरु हो गई। भारत पर ईस्लामी आक्रमण के बाद तो हालात बद से बदतर हो गये। इसी समय पर्दा–प्रथा, बाल–विवाह, सती–प्रथा, जौहर और देवदासी जैसी कुप्रथा प्रचलन में आईं। मध्ययुग में भक्ति आंदोलन ने महिलाओं की स्थिति को सुधारने के प्रयास जरूर किये, परन्तु वो उस हद तक सफल नहीं रहे। सिर्फ चुनिंदा स्त्रियां, जैसे कि – मीराबाई, अक्का महादेवी, रामी जानाबाई और लालदेद ही इस आंदोलन का सफल हिस्सा बन सकीं। इसके तुरंत बाद सिख– धर्म प्रादुर्भाव में आया। इसनें भी युद्ध, नेतृत्व एवं धार्मिक प्रबंध समितियों में महिलाओं एवं पुरुषों की बराबरी के उपदेश दिये। अंग्रेजी शासन ने अपनी तरफ से महिलाओं की स्थिति को सुधारने के कोई विशेष प्रयास नही किये, लेकिन 19वीं शताब्दी के मध्य में उपजे अनेक धार्मिक सुधारवादी आंदोलनों जैसे– ब्रह्म समाज (राजा राम मोहन राय), आर्य समाज (स्वामी दयानंद सरस्वती), थियोसोफिकल सोसाइटी, रामकृष्ण मिशन(स्वामी विवेकानंद), ईश्वरचंद्र विद्यासागर(स्त्री–शिक्षा), महात्मा ज्योतिबा फुले, सावित्रीबाई फुले (दलित स्त्रियों की शिक्षा) आदि ने अंग्रेजी सरकार की सहायता से महिलाओं के हित में सती प्रथा का उन्मूलन, 1829 (लार्ड विलियम बेंटिक) सहित कई कानूनी प्रावधान पास करवाने में सफलता हासिल की। इतनी प्रतिकूल परिस्थितियों के बावजूद इस दौर में युद्ध, राजनीति, साहित्य, शिक्षा और धर्म से कुछ सुप्रसिद्ध स्त्रियों के नाम उभरकर सामने आते हैं। जिनमें से रजिया सुल्तान (दिल्ली पर शासन करने वाली एकमात्र महिला साम्राज्ञी), गोंड की महारानी– दुर्गावती, शिवाजी महाराज की माता– जीजाबाई, कित्तूर की रानी– चेन्नम्मा, कर्नाटक की महारानी– अब्बक्का, अवध की सह– शासिका बेग़म हज़रत महल, आगरा की नूरजहां तथा झांसी की महारानी –लक्ष्मीबाई के नाम प्रमुख हैं। भारत का पहला महिला महाविद्यालय बिथयून कालेज, 1879 में खुला। जिससे चंद्रमुखी बसु, कादंबिनी गांगुली और आंनदी गोपाल जोशी नें वर्ष 1886 में शुरुआती शैक्षणिक डिग्रियां प्राप्त कीं थीं।

यूं तो पहले भी माता तपस्विनी, मैडम कामा, और सरला देवी जैसी कई क्रांतिकारी महिलायें भारत के राष्ट्रीय स्वतंत्रता आंदोलन में सक्रिय थीं, किंतु गांधी जी के आवाहन के बाद यह संख्या कई गुना और बढ़ गई। शांति घोष, स्मृति चौधरी, बीना दास, प्रीतिलता वाडेडकर, बनलतादास गुप्ता, विजयलक्ष्मी पंण्डित, राजकुमारी अमृत कौर, अरुणा आसफ अली, सुचेता कृपलानी, कस्तूरबा गांधी, दुर्गाबाई देसमुख, कैप्टेन लक्ष्मी सहगल, तथा सरोजिनी नायडू भारत की आजादी के संघर्ष में शामिल होने वाली प्रमुख महिलायें हैं। इनके अतिरिक्त कई विदेशी महिलाओं– मीरा बेन (मेडलीन स्लेड), सरला बेन(कैथरीन मेरी हीलमेन), एनी बेसेंट, भगिनी निवेदिता आदि ने भी इस आंदोलन में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।

आजादी के बाद के वर्षों में महिलाओं के लिए समान अधिकार (अनुच्छेद–14), राज्य द्वारा कोई भेदभाव नही करने(अनु.–15), अवसरों की समानता (अनु.–16), समान कार्य के लिए समान वेतन (अनु. –39), अपमानजनक प्रथाओं के परित्याग के लिए (अनु.– 51(ए)(ई)), प्रसूति सहायता के लिए (अनु.– 42) जैसे आदि अनेक प्रावधान भारतीय संविधान में किए गये। इसके अतिरिक्त अनैतिक व्यापार(निवारण) अधिनियम 1956, दहेज प्रतिषेध अधिनियम 1961, कुटुम्ब न्यायालय अधिनियम 1984, महिलाओं का अशिष्ट रूपण (प्रतिषेध) अधिनियम 1986, सती निषेध अधिनियम 1987, राष्ट्रीय महिला आयोग अधिनियम 1990, गर्भधारण पूर्वलिंग चयन प्रतिषेध अधिनियम 1994, घरेलू हिंसा से महिलाओं का संरक्षण अधिनियम 2005, बाल

विवाह प्रतिषेध अधिनियम 2006, कार्यस्थल पर महिलाओं का लैंगिक उत्पीड़न (प्रतिषेध) अधिनियम 2013, दण्डविधि (संशोधन) 2013 भारतीय महिलाओं को अपराधों के विरुध्द सुरक्षा प्रदान करने तथा उनकी आर्थिक एवं सामाजिक दशा में सुधार करने के लिए बनाये गए प्रमुख कानूनी प्रावधान हैं। कई राज्यों की ग्राम व नगर पंचायतों में महिलाओं के लिए आरक्षित सीटों का प्रावधान भी किया गया है।

विडम्बना तो यह है कि इतने सारे कानूनी प्रावधानों के होने के बावजूद देश में महिलाओं पर होने वाले अत्याचारों में कमी होने की बजाय वृद्धि हो रही है। राष्ट्रीय अपराध रिकार्ड ब्यूरो(NCRB) की हालिया रिपोर्ट के मुताबिक 2014 में प्रतिदिन 100 महिलाओं का बलात्कार हुआ और 364 महिलाऐं यैन उत्पीड़न का शिकार हुई। इस वर्ष केवल बलात्कार के 36735 मामले दर्ज किए गये जो 2012 में दर्ज (24923) मामलों से कहीं ज्यादा अधिक थे। यूनिसेफ की रिपोर्ट 'हिडेन इन प्लेन साइट' के मुताबिक भारत में 15 साल से 19 साल की उम्र वाली 34 प्रतिशत विवाहित महिलाऐं ऐसी हैं जिन्होंने अपने पति/ साथी के हाथों यौन हिंसा झेली है। इंटरनेशनल सेंटर– रिसर्च ऑन वीमेन के अनुसार भारत में 10 मे से 6 पुरुषो ने कभी न कभी पत्नी अथवा प्रेमिका के साथ हिंसक व्यवहार किया है। गृहमंत्रालय भारत सरकार द्वारा जारी आंकड़ों के मुताबिक 2014 से 2016 के बीच देश भर में बलात्कार 1,10,333 मामले दर्ज किए गये हैं। NCRB के अनुसार पिछले 10 वर्षों में महिलाओं के विरुद्ध हुए अत्याचारों में दो– गुने से ज्यादा की बढ़ोत्तरी हुई है। इस संबंध में देश में हर घंटे करीब 26 आपराधिक मामले दर्ज किए जाते हैं। यह स्थिति बेहद ही भयावह है। इसके अतिरिक्त कई अन्य चिंतायें भी जैसे– स्वास्थ्य, शिक्षा, सामाजिक सरोकार, घर के महत्त्वपूर्ण निर्णय लेने में भूमिका की कमी, दोहरा सामाजिक रवैया, प्रशिक्षण का अभाव, पुरुषों पर आर्थिक निर्भरता, गरीबी एवं धार्मिक प्रतिबंध शामिल हैं। यूएनडीपी (मानव विकास रिपोर्ट) 1997 के अनुसार भारत में 88% महिलायें रक्ताल्पता का शिकार हैं। भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में प्रजनन क्षमता पर नियंत्रण पाने के बहुत कम उपाय प्रयोग किये जाते हैं, जिससे बार– बार गर्भधारण और शारीरिक अक्षमता के चलते कई प्रकार की स्वास्थ्य समस्याऐं आये दिन देखनें में आती रहतीं हैं। हालाकि कुछ महिलायें इन सभी चुनौतियों से पार पाकर विभिन्न क्षेत्रों में देश के प्रतिष्ठत स्तरों तक भी पहुंची हैं, जिनमें श्रीमती इंदिरा गांधी, प्रतिभादेवी सिंह पाटिल, सुषमा स्वराज, निर्मला सीतारमण, महादेवी वर्मा, सुभद्राकुमारी चौहान, अमृता प्रीतम, महाश्वेता देवी, लता मंगेशकर, आशा भोषले, श्रेया घोषाल, सुनिधि चौहान, अल्का याज्ञनिक, सुश्री मायावती, जयललिता, ममता बनर्जी, मेधा पाटकर, अरुंधती रॉय, पी.टी. ऊषा, साइना नेहवाल, सानिया मिर्जा, साक्षी मलिक, पी. वी. सिंधू, हिमा दास, झूलन गोस्वामी, स्मृति मंधाना, मिथाली राज, हरमन प्रीत कौर, गीता फोगाट तथा मैरी कॉम आदि नाम उल्लेखनीय हैं।

भारत जैसे पुरुष–प्रधान देश में 70 के दशक से महिला सशक्तिकरण तथा फेमिनिज्म शब्द प्रकाश में आये। जिनमें 1990 के भूण्डलीकरण तथा उदारवाद के बाद विदेशी निवेश द्वारा स्थापित गैर–सरकारी संगठनों के रूप में अभूतपूर्व तेजी आई। इन संगठनों ने भी महिलाओं को जागृत कर उनमें उनके अधिकारों के प्रति चेतना विकसित करने तथा उन्हें सामाजिक/ आर्थिक रूप से सशक्त बनाने में महती भूमिका अदा की है। साथ ही मुस्लिम महिलाओं में प्रचलित निकाह– हलाला, तथा तीन तलाक जैसे पुरातनपंथी धार्मिक मान्यताओं के खिलाफ कानूनी लड़ाई लड़ने में मदद की है। हरियाणा, राजस्थान, पश्चिमी उत्तर–प्रदेश आदि में कन्या–भ्रूण हत्या को रोककर लिंग अनुपात के घटते स्तर को संतुलित करने तथा शिक्षा के क्षेत्र में महिलाओं की स्थिति सुधारने के प्रक्रम को ध्यान में रखते हुए केंद्र सरकार द्वारा 'बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओ' योजना चलाई जा रही है। तथा लोकसभा एवं विधानसभा के चुनावों में 33% महिला सीटों के आरक्षण का विधेयक लंबित है।

गौरतलब है कि आजाद भारत में महिलाएं दिन–प्रतिदिन अपनी लगन, मेहनत एवं सराहनीय कार्यों द्वारा राष्ट्रीय पटल पर अपनी पहचान बनाने में कामयाब हुई हैं। मौजूदा दौर में महिलाएं नए भारत के आगाज की अहम कड़ी दिख रही हैं। लंबे अरसे के अथक परिश्रम के बाद आज भारतीय महिलाएं समूचे विश्व में अपने पदचिन्ह छोड़ रही हैं। मुझे कहने में कोई गुरेज नहीं है कि पुरुष प्रधान रूढ़िवादी समाज में महिलाएं निश्चित रूप से आगामी स्वर्णिम भारत की नींव और मजबूत करने का हर संभव प्रयास कर रहीं हैं, जो सचमुच काबिले तारीफ है। हां, यह जरूर है कि कुछ जगह अब भी महिलाएं घर की चारदीवारी में कैद होकर रूढिवादी परंपराओं का बोझा ढो रही हैं। वजह भी साफ है, पुरूष प्रधान समाज का महज संकुचित मानसिकता में बंधे होना।

समय समय पर महिलाएं अपनी बेहतरी हेतु सक्रियता से आवाज उठाती रही हैं जिसकी पर्दा प्रथा, विधवा विवाह, तीन तलाक, हलाला व अन्य इसका उदाहरण है। आज समूचा भारत हर संभव तरीके से समाज की सभी बहन, बेटियों की हिफाजत चाहता है। एक कदम आगे बढ़कर भारत सरकार ने सन् 2001 को महिला सशक्तीकरण वर्ष घोषित किया था और सशक्तीकरण की राष्ट्रीय नीति भी सन 2001 में ही पारित की थी।

स्त्री– सुरक्षा और समता में उठाया गया हमारा प्रत्येक कदम किसी न किसी हद तक स्त्रियों की दशा सुधारनें में कारगर साबित हो रहा है, इसमें कोई दोराय नहीं, किंतु सामाजिक सुधार की गति इतनी धीमी है कि इसके यथोचित परिणाम स्पष्ट रूप से सामने नहीं आ पाते। हमें और भी द्रुत गति से इस क्षेत्र में जन–जागृति और शिक्षा पहुंचाने का कार्य करने की आवश्यकता है। शिक्षा सभी दोषों से छुटकारा दिलाने का आधारभूत साधन है। एक शिक्षित स्त्री न केवल अपना बल्कि पूरे परिवार का कल्याण कर सकती है। इसलिए शिक्षा को केन्द्र बनाकर तथा समुचित साधन और कानूनों का पालन सुनुश्चित कराके देश की महिलाओं को अपराध मुक्त बनाया जा सकता है।

संन्दर्भ ग्रन्थ सूची–

1. आहूजा राम, (2006), सामाजिक समस्याएं , रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर एवं नई दिल्ली
2. शर्मा जी0एल0, (2015), सामाजिक मुद्दे, रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर
3. अग्रवाल, डॉ0 अमित (2010), भारतीय सामाजिक समस्यायें, पृ0सं0 169–189
4. गुप्ता, प्रो0 एम.एल. &शर्मा, डी.डी., (2015), भारतीय सामाजिक समस्याएं,साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा, पृ0 816
5. मुकजी, प्रो0 आर.एन, भारतीय समाज एवं संस्कृति,विवेक प्रकाशन, जवाहर नगर दिल्ली, पृ0 282
6. कुमार, विनोद, (1995), महिला साक्षरता का विकास, कुरूक्षेत्र, अंक–5, पृ0 25–26
7. हिन्दुस्तान समाचार–पत्र, 23 दिसम्बर 2017, पृ0सं0–7
8. webduniya.com
9. civilhindipedia.com

सोशल मीडिया का युवा पीढी पर प्रभावः एक समाजशास्त्रीय अध्ययन रांची नगर के विशेष संदर्भ में

बिनीता रानी टोप्पो
एम.फील, नेट
सहायक प्राध्यापिका अनुबंध
समाजशास्त्र विभाग
रामलखन सिंह यादव महाविद्यालय, रांची

सरांश

सोशल मीडिया मीडिया का सबसे हालिया रूप है और इसने दुनिया भर में आश्चर्यजनक रूप से विकास किया है। आज यह हर किसी के जीवन का एक हिस्सा बन गया है। सोशल मीडिया एक बहुत व्यापक शब्द है और वास्तव में इसके कई अलग–अलग प्रकार, हैं जैसे कि वीडियो, ब्लॉग, आदि। यह एक ऐसी जगह है जहाँ आप अन्य लोगों के बारे में जानकारी प्रसारित कर सकते हैं। सोशल मीडिया संचार के लिए एक माध्यम है और यह सभी को ऐसी सामग्री साझा करने देता है जिसे दूसरे लोग भी ऑनलाइन कनेक्शन के साथ साझा कर सकते हैं। यह युवाओं को लाभ और अवसरों की एक श्रृंखला प्रदान करता है जिसमें वे विभिन्न तरीकों से खुद को सशक्त बना सकते हैं। युवा सामाजिक संपर्क बनाए रख सकते हैं और अधिक पहुंच बना सकते हैं। सोशल मीडिया एक ऐसा स्थान बन गया है जहाँ हम व्यवसाय के उद्देश्य के कई घंटे बिताते हैं या दूसरों या अन्य उद्देश्यों के साथ–साथ अवकाश या सामाजिककरण के अन्य तरीकों को भी सिखते हैं। वर्तमान अध्ययन युवाओं पर सोशल मीडिया के प्रभाव का पता लगाने का प्रयास करता है जिसमें उनके जीवन में आये महत्वपूर्ण बदलावों को रेखांकित करते हुए उसको सामने लाने का प्रयास किया गया है। आज के युग में सोशल मीडिया आवश्यकता बन रहा है। यह हमारे दैनिक जीवन में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इसके प्रभाव से स्वयं को कोई अलग नहीं कर सकता । युवा पीढ़ी पर इसके प्रभाव को जानना हमेशा दिलचस्प रहा है।इस शोध पत्र के माध्यम से युवाओं पर सोशल मीडिया के पडने वाले प्रभावों को बताने का प्रयास किया गया है। जो सोशल मीडिया शिक्षा के लिए मददगार साबित हो सकता है।

मुख्य विंदू–सोशल मीडिया, सोशल नेटवर्क, यूथ, सोशल मीडिया, युवा, समाज, शिक्षा, ज्ञान, सकारात्मक प्रभाव

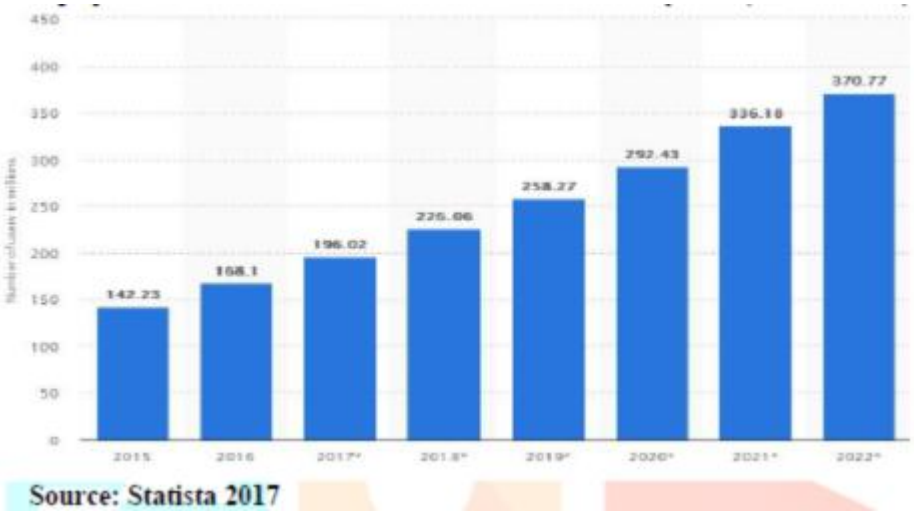
सोशल मीडिया मीडिया का सबसे हालिया रूप है और इसने दुनिया भर में आश्चर्यजनक रूप से विकास किया है। आज यह हर किसी के जीवन का एक हिस्सा बन गया है। सोशल मीडिया एक बहुत व्यापक शब्द है और वास्तव में इसके कई अलग–अलग प्रकार, हैं जैसे कि वीडियो, ब्लॉग, आदि। यह एक ऐसी जगह है जहाँ आप अन्य लोगों के बारे में जानकारी प्रसारित कर सकते हैं। सोशल मीडिया संचार के लिए एक माध्यम है और यह सभी को ऐसी सामग्री साझा करने देता है जिसे दूसरे लोग भी ऑनलाइन कनेक्शन के साथ साझा कर सकते हैं। यह युवाओं को लाभ और अवसरों की एक श्रृंखला प्रदान करता है जिसमें वे विभिन्न तरीकों से खुद को सशक्त बना सकते हैं। युवा सामाजिक संपर्क बनाए रख सकते हैं और अधिक पहुंच बना सकते हैं। सोशल मीडिया एक ऐसा स्थान बन गया है जहाँ हम व्यवसाय के उद्देश्य के कई घंटे बिताते हैं या दूसरों या अन्य उद्देश्यों के साथ–साथ अवकाश या सामाजिककरण के अन्य तरीकों को भी सिखते हैं।

सामाजिक मीडिया

सोशल मीडिया, ऑनलाइन संचार स्रोतों के लिए सामूहिक चैनलों का एक समूह है जो की इसके विविध प्रकारों के लिए संलग्न है जिसमें इनपुट, संचार, साझाकरण और सहयोग को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। यह विशेष रूप से वेबसाइटों, अनुप्रयोगों, ब्लॉगिंग आदि पर आधारित है,सोशल नेटवर्किंग, सोशल बुकमार्किंग और विकी सोशल मीडिया के विभिन्न प्रकार हैं। सोशल मीडिया इंटरैक्टिव वेब 2. 0इंटरनेट–आधारित अनुप्रयोग है । जिसमें उपयोगकर्ता–जनित सामग्री, जैसे कि पाठ पोस्ट या टिप्पणियां, डिजिटल तस्वीरें या वीडियो, और सभी ऑनलाइन इंटरैक्शन के माध्यम से उत्पन्न डेटा, सोशल मीडिया के जीवन–प्रवाह हैं। इसके उपयोगकर्ता सोशल मीडिया द्वारा डिजाइन और रखरखाव वाली वेबसाइट या ऐप के लिए सेवा–विशिष्ट संगठन व प्रोफाइल बना कर इसका प्रयोग करते हैं । सोशल मीडिया उपयोगकर्ता के प्रोफाइल को जोड़कर ऑनलाइन सामाजिक नेटवर्क के विकास की सुविधा प्रदान करता है जिसमें वे अन्य व्यक्तियों या समूहों के साथ जुडते हैं। सोशल मीडिया वेब–आधारित तकनीकों, डेस्कटॉप कंप्यूटर और का उपयोग करता है मोबाइल प्रौद्योगिकियों (जैसे स्मार्ट फोन और टैबलेट कंप्यूटर) के माध्यम से अत्यधिक इंटरैक्टिव प्लेटफॉर्म बनाने के लिए व्यक्ति, समुदाय और संगठन उपयोगकर्ता–जनित को साझा, सह–निर्माण, चर्चा और संशोधित कर सकता हैं जिसमें सामग्री या पूर्व–निर्मित सामग्री ऑनलाइन पोस्ट की जाती है।

यह व्यवसायों, संगठनों, समुदायों और व्यक्तियों के बीच संचार में पर्याप्त और व्यापक परिवर्तन लाता हैं। सोशल मीडिया व्यक्तियों और समुदायों के बीच सांगठनिक संवाद का एक माध्यम बनता जा रहा हैं। ये परिवर्तन तकनीकी स्व–अध्ययन के उभरते क्षेत्र पर ध्यान केंद्रित कर रहे हैं।

निम्नांकित आकडा भारत में 2015 से 2022 के सोशल नेटवर्क उपयोगकर्ताओं की संख्या दर्शाता है। 2019 में, यह अनुमान है भारत में लगभग 258.27 मिलियन सोशल नेटवर्क उपयोगकर्ता होंगे, जो 2016 में 168 मिलियन के करीब थे। भारत में सबसे लोकप्रिय सामाजिक नेटवर्क यूटयूब और फेसबुक हैं , इसके बाद सामाजिक ऐप व्हाट्सएप है। फेसबुक को 2021 तक भारत में 319 मिलियन के करीब पहुंचने का अनुमान है।



Source: Statista 2017

साहित्य की समीक्षा

सोशल मीडिया कंप्यूटर की मध्यस्थता वाली प्रौद्योगिकियां हैं जो वर्चुअल समुदायों और नेटवर्क के माध्यम से सूचना, विचारों, कैरियर के हितों और अभिव्यक्ति के अन्य रूपों को बनाने और साझा करने की अनुमति देती

हैं। वर्तमान में उपलब्ध स्टैंड–अलोन और विविध निर्मित सोशल मीडिया सेवाओं की विविधता परिभाषित करने की परिस्थितियों का परिचय देती है[2]।

सोशल मीडिया, सोशल सॉफ्टवेयर से प्राप्त, इंटरनेट वेबसाइटों, सेवाओं और प्रथाओं का एक संग्रह है जो सहयोग, सामुदायिक निर्माण, भागीदारी और साझाकरण का समर्थन करते हैं[3]।

एक कॉलेज के अध्ययन में यह पाया गया की कॉलेज के 95 प्रतिशत छात्रों ने स्वीकार किया कि उनके जीवन में भोजन, पानी, आश्रय और वायु के रूप में इंटरनेट महत्वपूर्ण था। लगभग, 64 प्रतिशत छात्रों ने एक कार पर इंटरनेट कनेक्शन चुनने के लिए स्वीकार किया। अध्ययन में यह भी निष्कर्ष निकाला गया कि पांच में से चार कॉलेज के छात्रों ने बताया कि इंटरनेट उनके जीवन का महत्वपूर्ण और आवश्यक हिस्सा है। रिपोर्ट में यह भी पाया गया कि युवाओं में कागज का इस्तेमाल कम हो गया है, क्योंकि पिछले दो साल में 40 प्रतिशत छात्रों ने बाजार से किताब नहीं खरीदी थी। सर्वेक्षण में फेस बुक का उपयोग भारतीय छात्रों में सबसे अधिक था। 92 प्रतिशत छात्रा प्रतिदिन अपने सोशल मीडिया एकाउंटस को चेक करते हैं जबकि एक तिहाई एक दिन में पांच बार चेक करते हैं।[4]।

सोशल नेटवर्किंग साइट युवाओं को ज्ञान का आदान–प्रदान करने, उनके बीच रोजगार और सामाजिक भागीदारी को जताने का एक सुनहरा अवसर प्रदान करने का एक मंच है। युवाओं को विशेष रूप से रुचि और व्यक्तिगत अनुभव, वीडियो और तस्वीर साझा करना जैसे महत्वपूर्ण मंच प्रदान करता है। इसके दो मुख्य प्रभाव हैं एक सकारात्मक प्रभाव है, और दूसरा नकारात्मक प्रभाव है। सकारात्मक प्रभाव के अंतर्गत अब युवा समूह अपने अनुभवों को साझा करने और अपने अनुसंधान के उददेश्यों को पूरा करने के लिए सोशल मीडिया का प्रयोग अपने दैनिक जीवन में करता हैं वहीं नकारात्मक प्रभाव के अंतर्गत वे प्रतिदिन अपने जीवन के 9 से 10 घंटे इसी के साथ व्यतीत करते हैं। जो उनके जीवन को विविध तरीकों से प्रभावित कर रहा हैं[5]।

सोशल मीडिया और युवा

सोशल मीडिया किशोरों और युवा वयस्कों के जीवन में बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। यह उस पूरे क्षेत्र के लोगों के साथ उनके जुड़ने का एक आसान तरीका है जिसमें वे रहते हैं। सोशल मीडिया का युवाओं पर सकारात्मक और नकारात्मक दोनों प्रभाव पड़ता है। युवावस्था को जीवन के मध्यसमय के रूप में परिभाषित किया जा सकता है। जब कोई युवा होता है, तो यह बचपन और वयस्क उम्र के बीच की अवधि है। सोशल मीडिया साइट्स एक ऐसा मंच प्रदान करती हैं, जिसके तहत युवा अपनी सामान्य रुचि और अनुशासन के आधार पर समूह और पेज बना सकते हैं और वे चर्चा के लिए विभिन्न विषयों को अपडेट करके अपने करियर के लिए कनेक्शन और अवसरों का निर्माण करते हैं।

नवीनतम जानकारी के लिए युवा सोशल मीडिया पर अधिक निर्भर हैं। छोटी पीढ़ी का कहना है कि सोशल मीडिया उनके जीवन का एक हिस्सा है और यह जीवन को आसान और कुशल बनाता है। सोशल मीडिया साइट्स उन्हें त्वरित और कुशल तरीके से संवाद करने में सक्षम बनाती हैं। यह सामाजिक संबंधों को बनाने में मदद करता है और देश के बाहर रहने वाले मित्रों और परिवारों और यहां तक कि परिवार के सदस्यों के संपर्क में आना आसान बनाता है। उनको सोशल मीडिया पर अपडेट लिखने में 15 सेकंड से अधिक का समय लगता है और सोशल नेटवर्क पर क्रॉस पोस्ट करने के साथ, उनका अपडेट उन सभी को मिल जाता है जिन तक आप पहुंचना चाहते हैं । यह युवाओं को खुद को अभिव्यक्त करने के लिए एक जगह देता है और सामाजिक कौशल विकसित करने में मदद करता है जो उन्हें अलग–अलग स्थितियों का संदर्भात्मक

रूप से मूल्यांकन और व्याख्या करने में सक्षम बनाता है और बाद में स्थितियों के लिए खुद को मानसिक रूप से तैयार करता है।

सारणी संख्या 1

उपभोक्ताओं की संख्या के आधार पर उच्च सोषल साइटस

क्रम संख्या	सोशल नेटवर्क	उपभोक्ताओं की संख्या मिलियन में
1	फेसबुक	1871
2	वाटसअप	1000
3	फेसबुक मैसेंजर	1000
4	पिंटरेस्ट	150
5	टविटर	317
6	लिंकडिन	106
7	स्काइप	300
8	इंस्टाग्राम	600

स्रोतः ग्लोबल सोशल मिडिया रिसर्च समरी 2017

सारणी संख्या 2

लिंग के आधार पर सोषल नेटवर्क साइटस के उपभोक्ताओं की संख्या

क्रम संख्या	सोशल नेटवर्क	उम्र के आधार पर	पुरूष प्रतिशत में	महिला प्रतिशत में	उपभोक्ताओं की संख्या मिलियन में
1	फेसबुक	18–24	74	26	195
2	यूटयूब	35 वर्ष से कम	62	38	60
3	पिंटरेस्ट	40 वर्ष से कम	20	80	176
4	लिंकडिन	24–35	54	46	30
5	इंस्टाग्राम	18–24	74	26	16
6	टविटर	20–24	80	20	23.2
7	अन्य स्रोत	18–34	71	29	200

स्रोतः सोशल मिडिया फैक्टस एण्ड स्टेटस फॉम इंडिया 2016

उपरोक्त चर्चा के अनुसार, यह स्पष्ट है कि सोशल मीडिया युवाओं के जीवन में एक प्रमुख भूमिका निभाता है, हालांकि यह स्पष्ट है कि इसका नकारात्मक प्रभाव भी है। बीबीसी की समाचार रिपोर्ट के अनुसार, यह कहा गया कि सोशल मीडिया सामाजिक अलगाव पैदा करता है, इसका कारण यह है कि अधिकांश युवा सोशल मीडिया पर कई घंटे बिताते हैं, वे शायद ही कभी आमने–सामने बातचीत करते हैं.[6]। वैज्ञानिकों ने कई अध्ययनों में सामाजिक अलगाव का मूल्यांकन किया है, और निर्धारित किया है कि यह अवसाद, चिंता, दैहिक शिकायतों और कई अन्य[7] सहित मानसिक, मनोवैज्ञानिक, भावनात्मक और शारीरिक समस्याओं की उत्पति का कारण भी बन रहा है।

लोगों के जीवन, विशेष रूप से युवाओं में यह उनके प्रोफाइल पर अन्य लोगों द्वारा किए गए पोस्ट से प्रभावित होते हैं। उनकी आदतें उनके दोस्तों के माता–पिता की शिक्षाओं से अधिक प्रभावित होती हैं। अधिक ध्यान आकर्षित करने वाले कार्य अधिक मूल्य धारण करते हैं, भले ही उनमें से कुछ अनैतिक या अवैध हों। सोशल मीडिया ने युवाओं पर सीखने और अनुसंधान करने की क्षमताओं को कम कर दिया। हम सभी जानते हैं कि युवा सोशल मीडिया से कई उपयोगी जानकारी और ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। हालाँकि, यह जानकारी युवाओं को विश्वास करना शुरू करा सकती है और सोशल मीडिया पर उपलब्ध जानकारी पर अधिक भरोसा कर सकती है। एक छात्र के जीवन में सबसे महत्वपूर्ण चीजें हैं अध्ययन करना, अच्छी आदतें सीखना और ज्ञान प्राप्त करना है, लेकिन आज, हम देखते हैं कि छात्र सोशल मीडिया साइट पर बहुत समय बिताकर अपनी पढ़ाई की उपेक्षा करते हैं। सक्रिय रूप से और अक्सर सोशल नेटवर्किंग में भाग लेने वाले छात्रों के अकादमिक ग्रेड को सोशल मीडिया नकारात्मक रूप से प्रभावित कर रहा हैं या उनके भविष्य के करियर को संवारने में बाधा उत्पन्न कर रहा हैं। वे दूसरों के साथ आमने–सामने बातचीत साझा करने और अनुभव करने के बजाय साइबर संचार में अधिक समय लगे रहते हैं। सोशल मीडिया में बहुत अधिक भागीदारी होने से इसकी एक लत लग सकती है जो बुरी आदतों को बढ़ाती है। साइबरबुलिंग को अक्सर सोशल मीडिया के खतरों में से एक के रूप में उद्धृत किया जाता है। यह तब होता है जब कोई व्यक्ति फेसबुक जैसी साइटों का उपयोग किसी के प्रति धमकी भरा व्यवहार अपनाने के लिए करता है। यह धमकाने के लिए आसान प्रतीत होता है क्योंकि वे व्यक्ति में अपने शिकार की प्रतिक्रियाओं को नहीं देखते हैं, और इस प्रकार परिणामों का प्रभाव कम होता है। गंभीर ऑनलाइन हमलों में उलझने वाले युवाओं के बारे में कई अच्छी तरह से प्रकाशित मामले हैं जो आत्महत्या या दूसरों पर शारीरिक या भावनात्मक निशान लगाने का संकेत देते हैं। आजकल, युवा अपनी दैनिक जीवन शैली और व्यक्तिगत जानकारी को सोशल मीडिया जैसे फेसबुक, ट्विटर और इंस्टाग्राम पर पोस्ट करना पसंद करते हैं। यह युवाओं के लिए एक ट्रेंडिंग शैली बन जाती है जो लोगों को उनके द्वारा किए गए हर काम को दिखाने के लिए[8] उचित माध्यम बन रहा है। सोशल मीडिया में उपयोगकर्ताओं के आंकड़े, तस्वीरें और वीडियो अनिश्चित काल तक उपलब्ध रहते हैं। इसलिए, सोशल मीडिया का उपयोग करने वाले युवाओं में अक्सर साइबर अपराध और अपहरण, हत्या और डकैती जैसी खतरनाक स्थितियों के उजागर होने की संभावना अधिक होती है। यह इस कारण से है कि सोशल मीडिया के उपयोगकर्ता अक्सर अपनी व्यक्तिगत जानकारी को बहुत अधिक पोस्ट करते हैं और इस तथ्य के बावजूद कि सोशल मीडिया में कम सुरक्षा प्रणालियां हैं, किसी के द्वारा भी उनकी व्यक्तिगत जानकारी को एक्सेस करना आसान बना देता है।

प्रौद्योगिकी की प्रगति के कारण सोशल मीडिया और युवाओं की दुनिया भर में व्यापक चर्चा होती है। सोशल मीडिया की उन्नति जिसमें सामाजिक नेटवर्क शामिल हैं, युवाओं के बीच में विशेष रूप से फेसबुक, ट्विटर, इंस्टाग्राम आदि बहुत लोकप्रिय हैं, हालांकि युवाओं में इनका भारी सकारात्मक प्रभाव पड़ता है, इसका नकारात्मक प्रभाव भी पड़ता है। यह स्पष्ट रूप से सामाजिक अविश्वास पैदा करने में युवाओं की व्यक्तिगत जीवन शैली को प्रभावित करता है जहां उनके पास आक्रामक, धमकी भरा व्यवहार होता है। ज्यादातर बार सोशल मीडिया का उपयोग करते समय यह साइबर क्राइम जैसे मामलों के बढने का जोखिम उत्पन्न करता है। वह तब होता है जब कोई धमकी भरे संदेश या चर्चा भेजता है। बहुत अधिक सूचना पोस्ट, चित्र साझा करना, जो स्थिति को अद्यतन करते समय चोरी की गोपनीयता के मुद्दों की ओर जाता है। ऑनलाइन में अधिक समय बिताने से अक्सर वे संचार का सामना करने और साइबर संचार पर भरोसा करने को अपने जीवन में महत्व नहीं देते हैं।

अध्ययन क्षेत्र

2011 की जनगणना के अनुसार रांची जिले की आबादी 2,914,253 है,, जो लगभग जमैका के राष्ट्र के बराबर है या अमेरिकी राज्य अरकंसास के हैं। , इससे इसे भारत में 130 वीं रैंकिंग मिली (कुल 640 में से)। जिले में प्रति वर्ग किलोमीटर (1,440 वर्ग मील) प्रति 557 निवासियों की आबादी घनत्व है। 2001–2011 के दशक में इसकी जनसंख्या वृद्धि दर 23.9: थी। रांची में लिंगानुपात हर 1000 पुरुषों पर 950 महिलाओं का है, और साक्षरता दर 77.13: है।[9]

भारत की 2011 की जनगणना के समय, जिले में 30.23 प्रतिशत जनसंख्या सदरी, 28.08 प्रतिशत हिंदी, 11. 88 प्रतिशत कुरमाली, 8.55 प्रतिशत उर्दू, 7.52 प्रतिशत कुरुख, 4.79 प्रतिशत संताली, 4.70 प्रतिशत मुंडारी, 2.51 प्रतिशत बंगाली, 2.17 प्रतिशत बोली जाती थी।[10]

यहाँ बोली जाने वाली भाषाओं में हिंदी मुख्य भाषा के रूप में शामिल है। नागपुरी और कुरमाली स्थानीय भाषा हैं। लगभग 17,000 द्वारा बोली जाने वाली एक ऑस्ट्रोआटिक भाषा की असूरी, आंशिक रूप से रांची के उत्तर में, और बिरजिया, लगभग 25,000 द्वारा बोली जाती है।[11], कुरुख भाषा आंशिक रूप से रांची के पश्चिम में बोली जाती है।

सैद्धांतिक ढांचा

यह अध्ययन प्रौद्योगिकी की स्वीकृति और उपयोग के एकीकृत सिद्धांत के सैद्धांतिक ढांचे को आधार बना कर किया गया हैं जिसमें एक प्रौद्योगिकी स्वीकृति मॉडल है जिसे वेंकटेश और अन्य लोगों द्वारा तैयार किया गया है । सूचना प्रौद्योगिकी की उपयोगकर्ता स्वीकृति एक एकीकृत दृष्टिकोण की ओर प्रेरित होती है। जिसमें इसका उद्देश्य किसी सूचना प्रणाली और उसके बाद उपयोग के व्यवहार का उपयोग करने के लिए उपयोगकर्ता के इरादों की व्याख्या करना है। यह सिद्धांत मानता है कि इसके चार प्रमुख परिस्थितियां हैं 1) प्रदर्शन प्रत्याशा, 2) प्रयास प्रत्याशा, 3) सामाजिक प्रभाव, और 4) स्थितियों को सुविधाजनक बनाना। पहले तीन उपयोग के इरादे और व्यवहार के प्रत्यक्ष निर्धारक हैं, और चौथा उपयोगकर्ता व्यवहार का प्रत्यक्ष निर्धारक है। इस सिद्धांत को आठ मॉडलों के निर्माण की समीक्षा और समेकन के माध्यम से विकसित किया गया था, जो पहले सूचना प्रणाली उपयोग व्यवहार (तर्कपूर्ण कार्रवाई का सिद्धांत, प्रौद्योगिकी स्वीकृति मॉडल, प्रेरक मॉडल, नियोजित व्यवहार का सिद्धांत, नियोजित व्यवहार का एक संयुक्त सिद्धांत) को समझाने के लिए निर्मित है।

विश्लेषण

सोशल मीडिया की पहुंच में मोबाइल फोन, स्मार्ट फोन और अन्य इंटरनेट उपकरणों जैसे उपकरणों का उपयोग शामिल है, खासकर जब यह युवाओं की बात आती है तब उपकरणों के प्रकार, सामाजिक नेटवर्क का उपयोग, पहुंच और स्थिति अद्यतन जैसे प्रमुख निर्धारक आमतौर पर सामाजिक नेटवर्क में युवाओं द्वारा किए जाते हैं। जब विविध डिवाइसों के प्रकार, स्मार्ट फोन और अन्य स्रोतों जैसे डेस्कटॉप, मैक, आदि का उपयोग किया जाता है।

सोशल मीडिया संचार के सबसे तेज माध्यमों में से एक है और इसका युवाओं की व्यक्तिगत जीवनशैली को आकार देने में बहुत प्रभाव है। हालांकि युवाओं के बीच इसकी बड़ी पहुंच है, लेकिन यह कुछ नकारात्मक प्रभाव भी डालता है जो हमेशा गोपनीयता के मुद्दों से संदर्भित होता है। सामाजिक नेटवर्क पर पूरी तरह से भरोसा करने से चेहरे का संचार कम से कम होता जा रहा है और इसके बजाय साइबर संचार में बढोतरी हो रही हैं।

सामाजिक नेटवर्क में साझा की गई जानकारी प्रामाणिक है या नहीं। युवा इसको जानने का प्रयास कभी नहीं करते हैं। बल्कि वे हमेशा उन मुददों को इसके साथ जोडते हैं जो जनता का ध्यान आकर्षित करते हैं जिसमें उनकी अपनी व्यक्तिगत जानकारी हैं और जो उनकी व्यक्तिगत जीवन शैली को प्रभावित करेगा। छात्र हमेशा सामाजिक नेटवर्क में शामिल होते हैं और उन्हें पढ़ाई, शारीरिक गतिविधियों आदि में एकाग्रता की कमी होती है, सोशल मीडिया में बहुत अधिक शामिल होने से भी इसकी लत लग सकती है जिसके परिणामस्वरूप सामाजिक अलगाव होता है। युवा प्रतिभाओं और अवसरों को सामने लाने के लिए एक नया मंच बनाने में सोशल मीडिया का सकारात्मक तरीके से समाज में अच्छा करने के लिए उपयोग करना बेहतर है।

सोशल मीडिया के सकारात्मक पक्ष

- विचारों, सूचनाओं, ज्ञान को साझा करना आसान हो गया है
- यह नए दोस्त बनाने और पुराने के साथ जुड़ने का अवसर देता है।
- व्यापक पैमाने पर किसी भी उत्पाद का विज्ञापन या प्रचार करना बहुत आसान है।
- यह व्यक्ति की प्रतिभा दिखाने का मंच हो सकता है। उदाहरण के लिए टिक टोक जैसे ऐप
- ऑनलाइन संचार या हम कह सकते हैं कि वर्चुअल टीम का काम आसान हो गया है।
- नई चीजों को सीखना आसान हो जाता है जैसे कुकिंग टिप्स, योग टिप्स, मेडिटेशन सीखना आदि।

सोशल मीडिया का स्याह पक्ष

- कोई भी औपचारिक कानून, नियम, नियम विरोधी सामाजिक गतिविधियों को नियंत्रित करने के लिए नहीं हैं।
- यह एक व्यक्ति को समाज के साथ व्यक्तिगत संपर्क से अलग करता है।
- लोग अधिक भौतिकवादी हो जाते हैं।
- यह सबसे तेजी से अफवाहें फैलाता है।
- कभी–कभी व्यक्तिगत जानकारी साझा करना व्यक्ति के लिए समस्या बन सकता है।
- कभी–कभी डेटा का कुछ निरंतर प्रवाह मानसिक टूटने का कारण बन जाता है।
- युवा अपने परिवार और दोस्तों की तुलना में सोशल मीडिया के साथ अधिक समय बिता रहे हैं।
- लोग सोशल मीडिया के आदी हो गए, जो उनकी एकाग्रता को अन्य कार्यों से अलग करते हैं।
- आजकल अवसाद सबसे आम बीमारी है।
- किसी के स्थान का पता लगाना अपराधियों के लिए काफी आसान है

इसलिए डेटा का विश्लेषण करके हम यह कह सकते हैं कि सोशल मीडिया अब युवाओं के लिए एक प्रभावी उपकरण है।

सोशल मीडिया का उपयोग सभी को करना चाहिए पर इसकी समय सीमा जरूर तय करना चाहिए। लोग अक्सर अपनी भावनाएं सोशल मीडिया पर व्यक्त करते हैं। लेकिन उस पर सिवाए टिप्पणी मिलने के अलावा कुछ नहीं होता। अगर आप परिवार और दोस्तों से अपनी भावनाएं सीधे साझा करेंगे तो आप बुरे दौर से जल्दी उबरेंगे। युवाओं को सोशल नेटवर्किंग वेबसाइट्स का नशा सा हो गया है। सोशल वेबसाइट पर दिन

में कई बार स्टेट्स अपडेट करना, घंटों तक दोस्तों के साथ चौटिंग करना जैसी आदतों ने युवा पीढ़ी को काफी हद तक प्रभावित किया है। घंटों तक फेसबुक व ट्विटर जैसी वेबसाइट्स पर समय बिताने से न केवल उनकी पढ़ाई प्रभावित हो रही है बल्कि धीरे–धीरे कुछ नया करने की रचनात्मकता भी खत्म हो रही है।

ख्याली दुनिया में खोए युवा

सोशल नेटवर्किंग साइट्स के माध्यम से तमाम अश्लील सामग्री और भड़काऊ बातें भी लोगों तक प्रसारित की जा रही है, जोकि लोगों के दिमाग पर बुरा प्रभाव डालती है। इसकी वजह से देश में दंगा फसाद में वृदि हुई है। सोशल नेटवर्किंग साइट्स ने लोगों को वास्तविक जीवन को भूलाकर आभासी जीवन में रहने को मजबूर कर दिया है।

संस्कारों पर प्रभाव

सोशल मीडिया के बढ़ते क्रेज से युवाओं में भारतीय संस्क्रति की कमी भी देखी जा रही हैं। युवाओं के रहन–सहन से लेकर परिवार के लिए आदर सम्मान सब कम होता जा रहा है।

भटकाना आसान

देश दुनिया में आए दिन कुछ न कुछ घटता रहता है और सोशल मीडिया के जरिए सभी जगह फैलता है। इसकी चपेट में युवा जल्दी आते हैं और उन्हें भटकाना–बहकाना आसान हो जाता है। इसलिए सोशल मीडिया पर बहुत संवेदशील मुद्दे पर बयानबाजी करने से युवाओं को रोका जाता है। ताकि उनकी नादानी किसी बड़े मुद्दे को भड़का न दें।

संदर्भ सूची

1. स्टेटिस्टा,2017एचटीटीपीएसः / / इलटस–टोइएफएल–इंग्लिस.ब्लॉगस्पॉट. इन / 2014 / 12 / एससेज–सोशल–नेटवर्किंग–इम्पैक्ट–ऑन–युथ.एचटीएमएल,
2. (वत्स, डंकन जे 2003, सिक्स डिग्रीजःद साइंस ऑफ ए कनेक्टेड एज, विन्टेज पब्लिकेसन, लंदन पृ संख्या 368
3. जुन्को, हेइबर्जर्ट, और लोकेन, 2010, द इफेक्ट ऑफ टविटर ऑन कॉलेज इंगेजमेंट एण्ड ग्रेडस, जर्नल ऑफ कम्प्यूटर एसिसटेड लर्निंग 27 पृ 119–132
4. सिस्को, 2011, इज द इंटरनेट ए फंडामेंटल हयूमन नेसेसिटी? इज ए वर्क प्लेस विथ फलेक्जिबल मोबिलिटी पॉलिसिज एज वैल्यूएबल एज सैलरी? सिसको कनेक्टेड वर्ल्ड टेक्नोलॉजी रिपोर्ट 2011
5. पार्वती जे और सुचित्रा, आर, 2015, इम्पैक्ट ऑफ युजेज ऑफ सोशल नेटवकिंग साइटस ऑन युथ, इंटरनेशनल जर्नल ऑफ कम्पयूटर एप्लिकेसंस वॉल्यूम 129 नं 3 नवंबर 2015
6. बीबीसी, 2009 ऑनलाइन नेटवर्किंग हार्म्स हेल्थ, एचटीटीपीः / / न्यूज.बीबीसी.को. यूके / 2 / एचआई / 7898510.एसटीएम 19 फरवरी 2009
7. डैनियल रीड, 2017, निगेटिव इम्पैक्ट ऑफ सोशल नेटवर्किंग साइटस, एचटीटीपीएस / / सोशलनेटवर्किंग.लवटूनो.कॉम / निगेटिव–इम्पैक्ट–ऑफ–सोशल–नेटवर्किंग साइटस 29 ऑक्टूबर 2017
8. लोकिंग, कैस्टिलो, 2012, इफेक्टस ऑफ सोशल नेटवर्किंग टू टीनएजरर्स. रिट्राइभ ऑन 26 अप्रेल 2016 फ्रॉम एचटीटीपीः / / एफेक्टसऑफसोशलनेटवर्किंगटूटीनएजरस.ब्लॉगस्पॉट. माई / 2012 / 03 / इफेक्टस–ऑफ–सोशल–नेटवर्किंग–टू–एचटीएमएल.

9. डब्ल्यू डब्ल्यू डब्ल्यू सेंसस2011.कॉम/डिस्ट्रीक्ट पीएचपी रिट्राइभ ऑन 30 सितंबर 2011
10. डब्ल्यू डब्ल्यू डब्ल्यू.सेंसस ऑफ इंडिया.जीओभी.इन
11. लेविस एम पॉल, 2009, बिजोरी ए लैंग्वेज ऑफ इंडियाः इथनोलॉजः लैंग्वेज ऑफ द वर्ल्ड, डलास, टेक्सासःएसआइएल इंटरनेशनल रिट्राइभ 30 सितंबर 2011 पृ 78

शैक्षिक गुणवत्ता बढ़ाने में कक्षाकक्ष प्रबन्ध की भूमिका का एक अध्ययन

डॉ0 सुनीता गुप्ता
प्राचार्या
डॉ0 एस. राधाकृष्णन शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय
लारी, रामगढ़

कक्षाकक्ष का प्रबन्ध एक शिक्षक का मुख्य उत्तरदायित है। शिक्षा प्रदान करनें के साथ–साथ शिक्षक से यह आशा की जाती है कि वह कक्षा को भी सँभालेगा । इसमें कोई संदेह नही कि अच्छा कक्षा प्रबन्धन शिक्षक में कुशलता लाता है और शिक्षक कार्य को प्रभावशाली बनाता है। जैसा कि फिलिप जेक्शन के अनुसार " कक्षाकक्ष ऐसा स्थान है जहाँ छात्र अपने जीवन निर्माण काल का अधिकतर समय व्यतीत करते है। यह वह स्थान है कि जहाँ परीक्षक असफल और सफल होते है। मन बहलाने की बाते पूरी होती है, जहाँ नई अंतःदृष्टि मिलती है और कौशलों को प्राप्त किया जाता है। किन्तु यह वह स्थान है जहाँ छात्र बैठते व सुनते है, प्रतीक्षा करते है व देखते है। अपने हाथ खड़े करते है, परीक्षाफल पास करते है, पंक्तिवद्ध खड़े होते है व अपनी पेंसिल तेज करते है। एक कक्षा में विद्यार्थी और शिक्षक होते है। कक्षा एक संगठन है जो शिक्षक के उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए स्थापित होता है। इसकी सफलता विद्यार्थियों की उपलब्धि के स्तर से आंकी जा सकती है। इसके उपेश्य उस समय प्राप्त हो सकते है जबकि इसको इस प्रकार नियामित एवं निर्देशित किया जाये कि विद्यार्थी कक्षा कक्ष के अनुभवों को सिखनें के लिए लाभप्रद पायें। कक्षा को नियमित करने और निर्देशित करने का कार्य शिक्षक का है। शिक्षक अपनी सत्ता एवं नेतृत्व को कुशलतापूर्वक कक्षा के प्रबन्धन के लिए उपयोग करता है। शिक्षक सारी कक्षा को अपने विश्वास में लेकर कार्य करता है। बिना शिक्षक की सत्ता के उपयोग के कक्षा में शोर होने लगता है और विद्यार्थियों का ध्यान बट जाता है। शिक्षक कक्षा का प्रबन्ध विद्यार्थियों के हित के लिए प्रदर्शित करके करता है।

कक्षा प्रबन्धन कक्षा के साधनों का प्रबन्ध एवं समय का प्रबन्ध करता है। कक्षाकक्ष में मानव संसाधन एवं भौतिक संसाधन दोनों होते है। कक्षा का मानव संसाधन शिक्षक और विद्यार्थी होते है और भौतिक संसाधन फर्नीचर, श्यामपट्ट, श्रव्य–दृश्य सामग्री इत्यादि होते है। मानव संसाधन अर्थात शिक्षक और विद्यार्थि के बीच पारस्परिक विश्वास और अर्न्तसम्बन्धों के विकास के होने से कक्षाकक्ष प्रबन्ध सफल और प्रभावशाली होता है तथा में अनुशासन बना रहता है जिससे विद्यार्थियों के सीखनें की प्रवृत्ति तेजी से विकासित होती है। तभी शिक्षक भौतिक संसाधनों को सीखनें की प्रक्रिया में आवश्यकतानुसार उपयोग करता है जिससे कक्षा में शैक्षिक गुणवत्ता का विकास होता है।

कक्षाकक्ष के प्रबन्ध में सम्मिलित हैं–

1. शिक्षक और छात्र के बीच में अच्छे परस्पर सम्बन्धों का विकास जिससे शिक्षक द्वारा प्रेषित ज्ञान विद्यार्थी तक पहुँच पाता है। शिक्षक के सीखानें की प्रक्रिया में विद्यार्थी सीखने के लिए प्रेरित होता है तथा अध्यापक सुनियोजित ढ़ंग से शिक्षक प्रक्रिया को पूर्ण करता है।
2. कक्षा में अनुशासन बनाये रखना कक्षाकक्ष प्रबन्ध का मुख्य शर्त है। कक्षा में अनुशासन स्थापित करके ही शिक्षक कार्य को प्रभावशाली बनाया जा सकता है शिक्षक वही सफल माना जाता है जो

कक्षा में अनुशासन स्थापित करके शिक्षण कार्य को प्रेशित करे तथा अनुशासनहीन विद्यार्थी को भी अनुशासन के दायरे में ला सके।

3. शिक्षक तथा विद्यार्थी द्वारा अपनी–अपनी भूमिका का निर्वाह करना कक्षा–कक्षा प्रबन्ध का मुख्य शर्त है। वही शिक्षक का शैक्षिक कार्य उसी कक्षा में सफल माना जाता है जहाँ विद्यार्थी सीखने की प्रक्रिया में रुचि प्रदर्शित करे तथा शिक्षक सीखने की प्रक्रिया को सफल करते हुए प्रभावशाली शिक्षण कार्य को प्रेषित करें।
4. शिक्षक द्वारा शैक्षिक युक्तियों को अपनाना भी कक्षाकक्ष प्रबन्ध का आवश्यक भाग है। शिक्षक कक्षा में शैक्षिक कौशल का आवश्यकतानुसार सफल प्रयोग करें तभी शिक्षण कार्य सफल माना जाता है।
5. स्वयं करके सीखना शिक्षा की अनिवार्य शर्त है, सब कुछ शिक्षक द्वारा ही नही सिखाया जा सकता, शिक्षक द्वारा स्वयं करके सीखना और शिक्षक द्वारा प्रोत्साहित करना कक्षा में अतिआवश्यक होता है।
6. परीक्षाएँ लेना या समय–समय पर टेस्ट लेना विद्यार्थियों के सीखने और सीखना सफल होने का मूल्यांकन प्रक्रिया होता है। मूल्यांकन प्रक्रिया द्वारा यह पता लगाया जाता है कि विद्यार्थी सीखनें में कितना सफल हुआ है तथा शिक्षक द्वारा दी गयी जानकारी को कितना आत्मसात कर पाया है यह भी कक्षा–कक्ष प्रबन्ध पर ही निर्भर करता है।
7. शिक्षार्थियों में आत्म–मूल्यांकन की प्रविधियों का विकास करना कक्षाकक्ष प्रबन्धन की कुशलता मानी जाती है। विद्यार्थियों में आत्म–मूल्यांकन की प्रविधि का विकास शिक्षक के मार्गदर्शन एवं अनुकूल शैक्षिक वातावरण में ही सफल है।
8. प्रभावशाली शिक्षक द्वारा विद्यार्थियों को आपस में मिलकर सीखने को प्रोत्साहित करना भी कक्षा प्रबन्धन के अन्तर्गत आता है। इस प्रकार के सीखनें में प्रत्येक विद्यार्थी दूसरे विद्यार्थी के लिए शिक्षक बन जाता है। अतएव विद्यार्थी सीखने वाला भी होता है और सीखाने वाला भी। शिक्षक भी सीखाने के साथ सीखता है क्योंकि उसे मूल्यावान अनुभव अपने विद्यार्थियों के संपर्क मे आने से मिल जाते है इस तरह शिक्षक और विद्यार्थी दोनों ही दोहरी भूमिका निभाते हैं।
9. विभिन्न शैक्षिक क्रियाओं के लिए समय का बँटवारा तथा एक सीखने की क्रिया से दूसरी ओर सरलता से बदल दिये जाने के भी कार्य कक्षाकक्ष प्रबन्धन के होते है। शिक्षक विभिन्न क्रियाओं के लिए समय का बँटवारा कार्य की आवश्यकता, महत्व और उसके रुचि के आधार पर करता है। कुशल शिक्षक अधिक समय सरल कार्यो की तुलना में कठिन और जटिल कार्यो को देता है।
10. शिक्षक कक्षा में फर्निचर को भी इस प्रकार लगाता है कि श्यामपट्ट और दूसरी सहायक सामग्री सब विद्यार्थियों को ठीक से दिखाई पड़े। शिक्षक जो सहायक सामग्री विद्यार्थियों को दिखना चाहता है उसके पूर्व परीक्षण कर लेता है ताकि कक्षा का समय नष्ट न हों। अतएव भौतिक साधनों का प्रबन्ध कक्षाकक्ष के प्रबन्धन में उतना ही महत्वपूर्ण है जितना कि मानव संसाधनों का प्रबन्धन।
11. कक्षाकक्ष प्रबन्ध में ही सम्मिलित है नये तकनीक का प्रयोग करते हुए कक्षाओं का संचालन जैसे स्मार्ट क्लास रूम, प्रोजेक्टर, आदि के द्वारा विद्यार्थी को पढ़ाना।

अतः शिक्षक कक्षाकक्ष के कार्यो में विशिष्ट रूप से जिनका प्रबन्धन करते है, वे है–योजना बनाना, संगठित करना, निर्देशित करना, नियंत्रण करना तथा सम्प्रेषण करना।

कक्षाकक्ष प्रबन्ध के प्रमुख आयाम

1. प्रत्येक कक्षाकक्ष में छात्रों की संख्या निष्चित व कम होनी चाहिए जिससे प्रत्येक छात्र पर अध्यापक पर्याप्त ध्यान दे सके।
2. विद्यालय में विद्यार्थियों के बैठने की उचित व्यवस्था हो।
3. विद्यालय भवन ऐसा बना होना चाहिए जिससे कक्षाओं में उचित रोषनी, हवा आदि का व्यवस्था हो।
4. कक्षा में अनुशासनहीनता को नियांत्रित करनें हेतु सी. सी. टी. भी. कैमरा आदि का भी प्रबन्ध हो।
5. कक्षाकक्ष शोर वाले स्थान पर न हो।
6. कक्षा–कक्ष का वातावरण दलीय राजानीति से परे हो तथा कक्षा का वातावरण शैक्षाणिक हो।
7. प्रत्येक अध्यापक पर कार्यो से सम्बन्धित भार उचित होना चाहिए।
8. प्रत्येक शिक्षण संस्था में उचित कार्यो पर इनाम व गलत कार्यो के लिए दण्ड की व्यवस्था होनी चाहिए।

कक्षाकक्ष प्रबन्धन की युक्तियाँ

कक्षाकक्ष प्रबन्धन द्वारा शैक्षिक गुणवता को बढ़ाने हेतु अनेक युक्तियों का भी प्रयोग किया जाता है। मनोवैज्ञानिक होमेन्ज के अनुसार– '' कक्षाकक्ष ऐसा स्थान है जहाँ पारस्परिक क्रिया होती है, सामाजिक परिस्थितियों को बढ़ाया जाता है और निर्देशात्मक स्थितियों में नियम बनाये जाते हैं ''। शिक्षक कक्षा–कक्ष के प्रबन्धन के लिए अनेक युक्तियों का प्रयोग करता है जैसे– नियमित कार्य सारणी बनाना, कक्षा आचार, शिक्षक का व्यवहार, शिक्षक की अनुशासन की समस्याओं के प्रति अभिवृत्ति, अंतःव्यक्तिगत सम्बन्धों को विकसित करना आदि।

नियमित कार्य सारणी बनाकर उसके अनुसार कक्षा का संचालन करना कक्षा–कक्ष प्रबन्धन की प्रमुख युक्ति है। शिक्षक कों कक्षा की क्रियाओं का संगठन व्यवस्थित ढ़ंग से करना चाहिए। जब विद्यार्थियों को पता होता है कि इस क्रिया के बाद कौन सी क्रिया करनी है, वह भी अगले क्रिया के लिए मानसिक रूप से तैयार रहता है। कक्षा के कार्यो में अपना रुचि प्रदर्शित करता है।

एक प्रभावशाली शिक्षक कक्षा आचार या कक्षा संस्कृति विकासित करता है। कक्षा आचार वह होता है कि जब शिक्षक कक्षा में प्रवेश करे तो सब खड़े हो जाये और शिक्षक का अभिवादन करें और शिक्षक उनकों उत्तर दे, जिसके बाद कक्षा शान्त हो जाय तथा कक्षा में अनुशासन बना रहे। शिक्षक का व्यावहार भी विद्यार्थियों को बहुत प्रभावित करता है। शिक्षक व्यवहार ही विद्यार्थी को सीखनें की प्ररणा देता है शिक्षक की मुस्कुराहट, प्रोत्साहन एवं सहानुभूति विद्याार्थियों के व्यवहार पर बहुत अच्छा प्रभाव डालता है। इसी प्रकार कक्षा प्रवन्धन में अनुशासन की समस्यायों को सुलझाना भी एक महत्वपूर्ण कार्य है। कक्षा में अनुशासन कायम रखते हुए शिक्षण कार्य को पूर्ण करना शिक्षक की प्रमुख जिम्मेदारी होती है। शिक्षक की अभिवृति विद्यार्थियों को सुधारने की होनी चाहिए न कि उनको गुनाहगारों की भांति दंडित करने की। शिक्षक को अपने व्यवहार द्वारा कक्षा में अच्छे अंतःव्यक्तिगत सम्बन्ध विकसित करना चाहिए। उसे सहानुभूति रखने वाला तथा दूसरों की प्रति संवेदनशील होना चाहिए। विद्यार्थियों के आपस में अच्छे सम्बन्ध बनें इसके लिए

षिक्षक को सामूहिक क्रियाओं का आयोजन करना चाहिए। उसे पक्षपात भी नही करना चाहिए। शिक्षक को कक्षा के कप्तान या मॉनीटर का वस्तुनिष्ठ ढ़ंग से चुनाव करना चाहिए। अधिकतर कक्षाओं में कक्षा कप्तान होते है जो शिक्षक को कक्षा प्रबन्धन में सहयोग देते है। शिक्षक को कक्षा कप्तान के चुनाव में सावधानी बरतनी चाहिए। वह कक्षा की राय मांग सकता है या ऐसे विद्यार्थी को नामांकित कर सकता है जो पढ़ाई या खेल–कूद या दोनो में सबसे उपर हो। कप्तान को सबके साथ अच्छे सम्बन्ध रखनें चाहिए।

शैक्षिक गुणवत्ता बढ़ानें में कक्षा–कक्ष प्रबन्ध की भूमिका महत्वपूर्ण है जैसा कि दार्शनिक जॉन ड्यूबी ने कहा है कि '' कक्षाकक्ष में ऐसी स्थितियाँ होती है जो छात्रों की गुणोन्मुख गतिविधियों को आगे बढ़ाती है अथवा बाधा डालती है प्रेरित करती है अथवा रोक लगाती है। '' इसप्रकार छात्रों का सर्वागृण विकास में कक्षा में हुए संप्रेषण की महत्वपूर्व भूमिका है। अच्छे व उत्तम कक्षा–कक्ष की व्यवस्था की तत्कालीन जिम्मेदारी कक्षाध्यापक की तथा स्थायी जिम्मेदारी संस्था के प्रधान की होती है। कक्षा में विभिन्न सुविधाओं को देने का कार्य विद्यालय अधिकारियो का तथा उन सुविधाओं का सही इस्तेमाल अध्यापक का कार्य है। कक्षाकक्ष का रख रखाव प्रधानाध्यापक, अध्यापक व छात्रों की सामूहिक जिम्मेदारी होती है तथा कक्षाकक्ष में शैक्षिक गुणवत्ता को बढ़ाना और बनायें रखने में षिक्षक का प्रमुख जिम्मेदारी होती है।

सामाजिक दृष्टिकोण से शिक्षा के तीन प्रमुख कार्य है– संस्कृति का संरक्षण, हस्तांतरन एवं संवर्धन यह कार्य शिक्षक की प्रमुख भूमिका में आते है। शिक्षक वह धूरी है जिसके माध्यम से पीढ़ी दर पीढ़ी वौद्धिक परम्पराओं तथा तकनीकी कौशलों का हस्तांतरण होता है। शिक्षक किसी देश की संस्कृति और परम्पराओं के दीपक को पीढी दर पीढ़ी प्रकाषित करता है। भारत के पूर्व राष्ट्रपति डा० सर्वपल्ली राधाकृष्णन् ने कहा है–" शिक्षक राष्ट्र के कल्याण व भविष्य के धरोहर के रक्षक है।" 21वीं सदी की शिक्षा के लिए यूनेस्को द्वारा प्रकाशित रिपोर्ट (डिलोर्स कामीशन) में शिक्षकों को शिक्षा के चार स्तम्भ कहे गये है–(1) ज्ञानार्जन के लिए अधिगम (Learning to Know)(2) कार्य के लिए अधिगम (Learning to do)(3)जीने के लिए अधिगम (Learning to Live)(4) आत्मानुभूति के लिए अधिगम (Learning to be)और यह कार्य शिक्षक को करने है। शिक्षक का कार्य कक्षाओं में करता है।

कार्य मात्र ज्ञानार्जन कराना नही है, जीवन के लिए अपेक्षित कौशलों की भी शिक्षा उसे विद्यार्थी को देनी है ताकि वह जीविकोपार्जन कर सके। इस प्रकार शिक्षा प्रणाली में वह अकेला ऐसा महत्वपूर्ण कारक है जिसके बिना शिक्षा की कल्पना नही की जा सकती है। शिक्षक द्वारा कक्षा में सृजितशैक्षिक वातावरण और शैक्षिक गुणवत्ता ही विद्यार्थियों के अधिगम को प्रभावी बनाता है और विद्यार्थी सीखनें को प्रेरित होता है।

इस प्रकार शैक्षिक गुणवत्ता बढ़ाने में कक्षाकक्ष प्रबन्ध की महत्वपूर्ण भूमिका है। शिक्षा के क्षेत्र में हो रहे नित्य नये प्रयोग, नये शैक्षिक तकनीक का प्रयोग के साथ कक्षा का उपयुक्त शैक्षिक वातावरण कक्षा कक्ष प्रबन्ध पर ही निर्भर करता है। कोठारी आयोग (1962–64) ने लिखा है कि '' राष्ट्र के भविष्य का निर्माण कक्षाओं में हो रहा है इस आधार पर कक्षाकक्ष प्रबन्ध में शिक्षक और विद्यार्थी के आपसी समस्या और उपयुक्त शैक्षिक वातावरण ही कक्षाकक्ष प्रबन्ध को व्यवास्थित रखती है तथा कक्षा में शैक्षिक गुणवता को बढ़ाती है, जिसका विद्यार्थियों में सीखने की क्षमता का तेजी से विकास होता है। इस प्रकार शैक्षिक गुणवता बढ़ाने में कक्षा–कक्ष प्रबन्ध की भूमिका महत्वपूर्व है।

सन्दर्भ–

1. शर्मा, आर० ए० चतुर्वेदी, शिखा, विद्यालय संगठन तथा शिक्षा प्रशासन, प्रकाशक आर० लाल बुक डिपो, मेरठ।
2. मंगल, डॉ० जे० पी०, माध्यमिक शिक्षा एवं विद्यालय प्रबन्ध, प्रकाशक श्री विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा–2
3. वर्मा, डॉ० जे० पी वर्मा, मंजू, विद्यालय प्रबन्धन, प्रकाशक आर० लाल बुक डिपों मेरठ

नेहरूः लोकतान्त्रिक समाजवाद

डॉ. अर्चना सिंह
असि0 प्रो0 राजनीति शास्त्र
महाराज बलवंत सिंह पी0जी0 कॉलेज,
गंगापुर (राजातालाब), वाराणसी

पण्डित जवाहर लाल नेहरू स्वतन्त्र भारत के प्रधानमंत्री के रूप में सदैव अविस्मरणीय रहेगे। उन्होनें स्वयं को राष्ट्रीय जीवन से इतना आत्मसात् कर लिया था कि उनके बिना हमारे लिए स्वतन्त्र भारत की कल्पना भी निरर्थक है। स्वतन्त्रता व जनतन्त्र के पुजारी शान्ति के अग्रदूत तथा एक कर्मठ जननायक के रूप भारत की आगे आने वाली पीढ़िया उनसे निरन्तर प्रेरणा लेती रहेगी। उनके जीवन और कार्यों का गहरा प्रभाव हमारे चिन्तन, सामाजिक संगठन और हमारे बौद्धिक विकास पर पड़ा है। उन्होंने जिस तरह से इस शोषित व पीड़ित देश का नव निर्माण किया उसका उदाहरण किसी देश के इतिहास में मिलना कठिन है। उच्चकोटि के विचारक तथा लोकतान्त्रिक समाजवाद के समर्थक नेहरू मानवतावादी थे बच्चों के बीच चाचा नेहरू अपने महान देश में ही नही वरना सम्पूर्ण विश्व मे सम्मानित और प्रंशसनीय राजनेता थे।

मानवमात्र का उत्थान कल्याण तथा उनका सुख एंव आनन्द नेहरू के चिन्तन की धुरी थी। उनका मानवीय दृष्टिकोण ही था कि वे गुलामी को मनुष्य पर होने वाला सबसे बड़ा अत्याचार मानते थे स्वतन्त्रता प्राप्त करने वाले देश उन्हें सच्चा हमदर्द और मसीहा मानते थे। मानवीय गरिमा को उच्चतम शिखर तक पहुँचाने वाले नेहरू के बारे में मलेशिया के प्रधानमंत्री टुंकू अब्दुल रहमान का कहना था – नेहरू मेरी प्रेरणा के स्रोत थे नेहरू को भारत से अगाध प्रेम उन्होने लिखा था हिन्दुस्तान मेरे खून में समाया हुआ है उसमे बहुत कुछ ऐसी बाते है जो मुझे सम्भावना प्रेरित करती है। उन्होंने अपनी पुस्तक भारत एक खोज में लिखा है – किसी भी पराजित देश के लिए राष्ट्रीय स्वतन्त्रता प्रथम तथा प्रधान आकांक्षा होनी चाहिए। नेहरू समाजवादी समाज के प्रबल समर्थक थे वे लोकतन्त्र को एक शासन प्रणाली ही नहीं अपितु जीवन पद्धति मानते थे। राष्ट्रीय आन्दोलन के दौरान ही नेहरू जी ने बार–बार कहा था स्वतन्त्र भारत लोकतान्त्रिक भारत होगा वे संसदीय लोकतन्त्र को अधिक महत्व देते थे तथा आर्थिक एवं सामाजिक लोकतन्त्र में विश्वास रखते थे। नेहरू के अनुसार–''शासन के अन्य प्रकारों की तुलना में लोकतन्त्र जनता से अधिक उच्च प्रतिमानों की अपेक्षा करता है। यदि जनता उस मापदण्ड को नहीं पहुँच पायी तो लोकतान्त्रिक यन्त्र असफल हो जाएगा नेहरू भारतीय समस्याओं का भारतीय समाधान चाहते थे वास्तव में नेहरू लोकतान्त्रिक समाजवाद के प्रवर्तक थे। गुट निरपेक्षता के जनक जवाहरलाल नेहरू ने कहा था–यह भारत के स्वाभिमान के विरूद्ध होगा कि भारत इनमे से किसी भी गुरू का अनुयायी बने, अतः भारत ने विश्व राजनीति के क्षेत्र में गुट निरपेक्षता का मार्ग प्रतिपादित किया है नेहरू ने विश्व को गुट निरपेक्षता के द्वारा तनाव शैथिल्य का वातावरण प्रदान किया साथ ही निर्बल देशों को बल भी प्रदान किया। राजनीतिक विचारक के रूप में नेहरू के तीन मुख्य आदर्श थे लोकतन्त्र, समाजवाद और धर्मनिरपेक्षता। संविधान सभा के महत्वपूर्ण सदस्य होने के नाते नेहरू ने इस बात का आग्रह किया था कि भारतीय संविधान द्वारा इस देश में धर्मनिरपेक्ष सरकार की स्थापना की जाय परिणाम स्वरूप 42वें संविधान संसोधन के बाद भारतीय संविधान की प्रस्तावना में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि –

भारत एक धर्म निरपेक्ष राज्य है यहाँ सभी धर्मो को अपने विचारों तथा प्रचार प्रसार का अधिकार है। पंचशील के प्रतिपादक नेहरू का अन्तर्राष्ट्रीय चिन्तन और मानवतावादी दृष्टिकोण का सर्वाधिक उज्जवल पक्ष यह था कि वे विश्वशक्ति में विश्वास रखते थे नेहरू का मानना था कि युद्ध का विचार जंगली और असभ्यता का विचार है एक बार उन्होंने कहा था यदि हमने युद्ध को समाप्त नहीं किया तो युद्ध हमें समाप्त कर देगा। श्रीमती शुचिता कपलानी ने नेहरू के बारे में कहा था कि – नेहरू का जीवन बहुमुखी रहा है वह एक कुशल राजनेता अनुभवी राजनीतिक अथक योद्धा और प्रभावशाली लेखक थे सबसे अधिक वे मानवता के पुजारी थे। मिश्र के राष्ट्रपति नासिर ने कहा था कि – नेहरू की जिन्दगी एक मशाल की तरह थी जिसमें हिन्दुस्तान, एशिया और दुनिया को रोशनी मिलती थी। आधुनिक भारत के महान राजनीतिज्ञों में नेहरू का नाम शिखर पर है। उनके द्वारा लिखी पुस्तकों भारत एक खोज, मेरी कहानी तथा विश्व इतिहास की झलक उन्हें महान लेखक व चिन्तक परिलक्षित करती है। मानवतावादी तथा लोकतान्त्रिक समाजवादी के प्रवर्तक नेहरू को महान भारतीय राजनेता कहा जाता है। नेहरू की प्रतिभा के अनेक पक्ष अब इतिहास का अंग बन चुके है किन्तु हम इस महान राजनेता के आदर्शों और नीतियो को तब तक नहीं समझ पायेंगे जब तक हम उन दर्शन को न समझ ले जो इन आदर्शों और नीतियों में अन्तर्निहित था और यह न जान ले कि किस प्रकार इसने उनके विचारों के निर्माण में सहायता की।

नेहरू का चिन्तन उनके पिता मोतीलाल नेहरू, महात्मा गाँधी, ऐनी बेसेण्ट, बुक्स, रसेल, कार्लमार्क्स आदि से प्रभावित था। नेहरू के चिन्तन और व्यवहार को प्रभावित करने में सबसे अधिक निर्णायक भूमिका महात्मा गाँधी की रही है। गांधी से उन्होंने सत्याग्रह, अहिंसा, शान्ति और नैतिकता से परिपूर्ण राजनीति का पाठ पढ़ा। ऐनी बेसेण्ट के प्रभाव से ही उनकी रूचि थियोसोफिकल सोसाइटी के प्रति बढ़ी। वे बर्नार्ड शॉ और बैब्स के फेबियनिज्यम और रसेल तथा जॉन मेनार्ड कीन्स की बौद्धिक जागरूकता से भी प्रभावित हुए थे। कार्ल मार्क्स के भौतिकवादी विचारों का प्रभाव उन पर पड़ा। नेहरू पर बुद्ध और ईसा के विचारो का भी प्रभाव पड़ा। उन्होंने बुद्ध और ईसा के समान ही मानव आदर्शों और नैतिकता की शक्ति में विश्वास प्रकट किया। उन पर गीता का भारी प्रभाव था गीता के कर्म के सन्देश को उन्होंने अपने जीवन में उतारा था। जवाहरलाल नेहरू कट्टर अथवा उग्र नास्तिक अथवा भौतिकवादी नहीं थे किन्तु वे अध्यात्मवादी भी नहीं थे। उन्होंने तत्व शास्त्र और ज्ञान शास्त्र की सूक्ष्म तथा जटिल समस्याओं पर विवाद में उलझने से इन्कार कर दिया। नेहरू का व्यक्तित्व अपने में पूर्णतः नवीन था वे एक ऐसे राजनीतिज्ञ थे जिन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन राजनीतिक सिद्धान्तों की अपेक्षा उनके व्यवहारिक स्वरूप को सँवारने में लगा दिया। साथ ही सैद्धान्तिक पक्ष भी उनकी दृष्टि से कभी ओझल नहीं हुआ। अपने असीमित अध्ययन एवं दार्शनिक दृष्टिकोण के कारण निश्चय ही वे वर्तमान समस्याओं को उनकी सैद्धान्तिक पृष्ठभूमि के आधार पर तौलते थे। एक राजनीतिज्ञ होते हुए भी वे मौकियाविलियन टाइप की राजनीति से दूर थे। धर्म के प्रति अधिक आस्था न रखते हुए भी निजी एवं सार्वजनिक जीवन में वे नैतिक मूल्यों को स्वीकार करते थे। गाँधी के प्रति अटूट श्रद्धा रखते हुए तथा उनके आदर्श की प्राप्ति हेतु श्रेष्ठ साधन ही उपयुक्त है के सिद्धान्त को स्वीकार करते हुए भी वे गांधी जी के जीवन के प्रति आध्यात्मिक एवं धार्मिक दृष्टिकोण के सिद्धान्तों के प्रति सदैव उदासीन रहे। इसीप्रकार मार्क्स के समाजवाद के प्रति आकृष्ट होकर भी उन्होंने मार्क्स के समग्र दर्शन को कभी भी अंगीकार नहीं किया। स्वभाव से वे हिंसा में विश्वास नहीं करते थे, अतः मार्क्सवाद उन्हें त्रुटिपूर्ण दिखायी दिया। सभी समस्याओं को उन्होंने ऐतिहासिक दृष्टिकोण से देखने का प्रयास किया। इस प्रकार उनका व्यक्तित्व अनेक विरोधी तत्वों एवं विचारधाराओं का सम्मिश्रण था।

नेहरू का चिन्तन और उनके कार्यकलाप इस बात के प्रतीक है कि वे महान लोकतान्त्रिक थे। नेहरू ने लोकतंत्र को केवल राजनीति क्षेत्र तक ही सीमित नहीं रखा अपितु आर्थिक और सामाजिक क्षेत्र को भी लोकतंत्र की परिधि में लिया उनका कहना था कि नागरिकों को केवल राजनीतिक स्वतन्त्रता देना ही पर्याप्त नहीं है, उन्हें अवसरों की समानता दी जानी चाहिए। सामाजिक अस्पृश्यताओं और घोर आर्थिक असमानताओं से पूर्ण समाज कभी लोकतान्त्रिक नहीं हो सकता। महात्मा गांधी के राजनीतिक उत्तराधिकारी होने के कारण नेहरू साध्य की ही सात्विकता में विश्वास नहीं करते थे वरन साथ–साथ साधन की पवित्रता पर भी बल देते थे। साधन के रूप में उन्होंने लोकतंत्र का ही प्रयोग किया। उन्हें सत्तावाद तथा हिंसा के घृणा थी। वे चाहते थे कि भारत पश्चिम के उन्नत औद्योगिक राष्ट्रो के समकक्ष स्थान प्राप्त कर ले किन्तु इस आदर्श को प्राप्त करने के लिए उन्होंने अधिकनायतन्त्रीय यन्त्रीकृत हिंसा के मार्ग का परित्याग कर दिया था। नेहरू ने अपने अंगणित भाषणों तथा अविराम यात्राओं के द्वारा जनता से सम्पर्क स्थापित करने की प्रणाली विकसित कर ली थी। इससे नेता का जनता के साथ एकात्म स्थापित होता है। यह बात लोकतान्त्रिक प्रक्रिया के लिए बडीलाभकारी सिद्ध होती है। नेहरू ने जनता को निरन्तर अनुशासन तथा भाईचारे की प्रेरणा दी। इसमें उनका उद्देश्य सामुदायिक भावना को दृढ़ करना था जिसे मैकाइवर ने लोकतान्त्रिक व्यवस्था का आधार बताया है।

नेहरू अपने विरोधियों के विचारों के प्रति सहनशीलता और सम्मान की भावना रखते थे। उनकी दृष्टि में हठवादिता और रूढ़िवादिता की प्रवृत्ति लोकतन्त्र के लिए घातक थी। लोकतान्त्रिक भावना की मांग है कि हम अपनी समस्याओं का निराकरण आपसी विचार विमर्श, तर्क–वितर्क और शान्तिपूर्ण उपायों से करें। नेहरू संसदीय सरकार को अधिक अच्छा इसलिए समझते थे कि यह समस्याओं को हल करने का एक शान्तिपूर्ण उपाय है। उन्हीं के शब्दों में, ''इस प्रकार की सरकार में वाद–विवाद, विचार–विमर्श और निर्णय करने की और उस निर्णय को तब भी स्वीकार करने की पद्धति अपनायी जाती है, जब कि कुछ लोग असहमत होते हैं। फिर भी संसदीय सरकार में अल्पसंख्यकों का बहुत महत्वपूर्ण भाग रहता है। यह स्वाभाविक है कि बहुसंख्यकों को केवल इस कारण कि वे बहुसंख्यक हैं, अपने मार्ग पर चलने की स्वतन्त्रता होनी चाहिए। किन्तु अल्पसंख्यकों की उपेक्षा करने वाला बहुसंख्यक दल अपना काम संसदीय गणतन्त्र की सही भावना से नहीं कर रहा होता।'' नेहरू हर काम को लोकतान्त्रिक ढंग से करने के आदी थे। वे समुचित वैज्ञानिक साधनों द्वारा अपनी मांगें मनवाने और निर्णयों में परिवर्तन कराने के पक्ष में थे, लेकिन प्रत्यक्ष कार्यवाही जैसी कोई भी आन्दोलात्मक तकनीक उनकी दृष्टि में अलोकतान्त्रिक थी। सर्वाधिकारवाद और हिंसात्मक साधनों के प्रति उनका विरोध इतना उग्र था कि उन्होंने एक ऐसे समय मुसोलिनी और हिटलर से मिलने तक से इन्कार कर दिया जब विश्व के बड़े से बड़े राजनीतिज्ञ इन तानाशाहों से मिलने में अपना गौरव समझते थे।

नेहरू का दृढ़ विश्वास था कि लोकतन्त्र की बुराइयां ऐसी नहीं हैं कि उन्हें दूर नहीं किया जा सकता। यदि उत्कृष्ट नैतिक चरित्र का पालन किया जाय तो लोकतन्त्र के सफल संचालन में कोई सन्देह नहीं।

नेहरू ने संसदीय लोकतन्त्र की सफलता के लिए वयस्क मताधिकार के महत्व को स्वीकार किया। नेहरू के अनुसार वर्तमान युग की सबसे बड़ी सस्या है केन्द्रीकरण तथा राष्ट्रीय स्वतन्त्रता की समस्या को सुलझाना। उनके अनुसार इस समस्या का समाधान संसदीय लोकतन्त्र में ही निहित है। नेहरू ने समाजवाद से प्रेरणा प्राप्त कर लोकतन्त्र को समाजवादी लोकतन्त्र के रूप में परिष्कृत करने का सुझाव दिया। नेहरू ने लोकतन्त्र के विकास के लिए सैद्धान्ति समाजवाद को अपनाने का आग्रह किया।

नवम्बर 1927 में नेहरू ने सोवियत संघ की संक्षिप्त यात्रा की। उस यात्रा के दौरान उन्होंने स्वयं आंखों से उस देश की उन महान उपलब्धियों को देखा जो उसने शिक्षा स्त्री उद्धार तथा किसानों की दशा के सुधार के क्षेत्र में प्राप्त की थीं। रूस में लौटने के बाद उन्होंने समाजवाद के विचारों को लोकप्रिय बनाने का कार्य आरम्भ कर दिया। 1936 में कांग्रेस के लखनऊ में हुए अधिवेशन में उन्होंने कहा–*''मैं इस नतीजे पर पहुंच गया हूं कि दुनिया की समस्याओं और भारत की समस्याओं का समाधान समाजवाद में ही निहित है और जब मैं इस शब्द 'समाजवाद' को इस्तेमाल करता हूं, तो किसी अस्पष्ट, मानवीयतावादी अर्थ में नहीं बल्कि एक वैज्ञानिक, आर्थिक क्षेत्र में।''* किन्तु समाजवाद एक आर्थिक सिद्धान्त से भी बढ़कर कुछ है : ''यह जीवन का एक दर्शन है और इस रूप में यह मुझे भी भाता है। भारत की जनता की कंगाली, जबर्दस्त बेरोजगारी, दयनीयता और गुलामी को दूर करने का मैं समाजवाद के अलावा कोई दूसरा रास्ता नहीं देख पाता हूं। इसका मतलब है कि हमें अपने राजनीतिक और सामाजिक ढांचे में बहुत बड़े क्रान्तिकारी परिवर्तन करने होंगे, जमीनों और उद्योग–धन्धों का शिकंजा जमाये बैठे निहित स्वार्थों को और साथ ही, सामन्ती तथा निरंकुशता भारतीय रजवाड़ों की व्यवस्था को भी खत्म करना होगा। इसका मतलब है कि सिवाय एक सीमित अर्थ में निजी सम्पत्ति को समाप्त करना होगा और मुनाफे खड़े करने की मौजूदा व्यवस्था की जगह, सहकारी सेवा के उच्चतर आदर्श को स्थापित करना होगा, इसका मतलब है कि अन्ततः हमें अपनी आदतों और इच्छाओं में परिवर्तन करना होगा। इसका मतलब है, एक नयी सभ्यता को कायम करना, जो मौजूदा पूंजीवादी व्यवस्था से मूलतः भिन्न होगी।

इस प्रकार जवाहरलाल नेहरू के लिए समाजवाद केवल आर्थिक प्रणाली नहीं थी वह एक जीवन दर्शन था। समाजवाद न केवल भारत से कंगाली, बेरोजगारी, निरक्षरता, बीमारी और गन्दगी मिटाने के लिए ही जरूरी था, वरन् मानव व्यक्तित्व को विकसित करने के लिए भी जरूरी था। सुभाषचन्द्र बोस को 1939 में लिखे एक पत्र में नेहरू ने कहा था : *''मैं समझता हूं कि स्वभाव और प्रशिक्षण से मैं एक व्यक्तिवादी और बौद्धिक रूप से एक समाजवादी हूं–फिर इस सबका कुछ भी मतलब क्यों न हो, मैं आशा करता हूं कि समाजवाद मानव व्यक्तित्व को कुचलता या नष्ट नहीं करता मैं तो दरअसल उसकी ओर इसलिए आकर्षित हूं कि वह अगणित मनुष्यों को आर्थिक और सांस्कृतिक दासता के बन्धनों से मुक्त करेगा।''*

स्वाधीनता के पश्चात नेहरू ने अपनी पूरी शक्ति से समाजवादी आधार पर भारत के निर्माण का कार्य आरम्भ किया। अपने समाजवादी विचारों को क्रियान्वित करने के लिए उन्होंने नियोजन का सहारा लिया। महासमिति के अधिवेशनों में जो प्रस्ताव पेश हुए वे नेहरू द्वारा प्रेरित थे। वहीं कांग्रेस महासमिति ने यह निर्णय लिया कि ''नियोजन समाजवादी समाज की स्थापना के उद्देश्य से होना चाहिए, जहां उत्पादन के प्रमुख साधन सामाजिक स्वामित्व एवं नियन्त्रण के अन्तर्गत होंगे और जहां राष्ट्रीय सम्पदा का समान वितरण होगा।'' भूमि सुधार सम्बन्धी नागपुर प्रस्ताव में भूमि की अधिकतम सीमा के निर्धारण और संयुक्त सहकारिताओं पर बल दिया गया। इस प्रकार कांग्रेस श्री नेहरू के गतिशील नेतृत्व में भारत को लोकतन्त्रीय समाजवादी समाज बनाने की दिशा में बढ़ चली।

यहां श्री नेहरू के आर्थिक विचारों के सम्बन्ध में, जो समाजवादी विचारधारा से ओत–प्रोत थे, कुछ बातें स्पष्ट कर देना आवश्यक है। वे अर्थशास्त्र की उदारवादी श्रेणी में विश्वास नहीं करते थे, यद्यपि स्वतन्त्रता सम्बन्धी उनके विचार पर्याप्त मात्रा में उदारवादी थे। न तो वे रिकार्डों की भांति आर्थिक क्षेत्र में अहस्तक्षेप की नीति के समर्थक थे और न ही वे अर्थशास्त्र की फिजिओक्रेटिक पद्धति में विश्वास करते थे। उनके विचार के समर्थन के साथ साथ वे आर्थिक विकास में व्यक्तिगत अथवा दलित क्षेत्र के महत्व को भी श्रद्धा की दृष्टि से देखते थे।

श्री नेहरू का सम्पूर्ण आर्थिक दर्शन समाजवादी विचारधारा पर आधारित था और उनका समाजवाद केवल आर्थिक संगठन का साधन मात्र न होकर एक जीवन का दर्शन था। वे मैक्स एटलर की भांति समाजवादी थे।

श्री नेहरू की दृष्टि में समाजवाद का अर्थ पूर्ण राष्ट्रीयकरण नहीं था। अपनी आर्थिक योजना में वे ग्रामीण उद्योग धन्धों तथा खादी को भी स्थान देते थे। यहां उनके ऊपर गांधी जी का प्रभाव स्पष्ट दिखायी देता है। वास्तव में, श्री नेहरू ने आर्थिक क्षेत्र में पश्चिमी ढंग की समाजवादी अर्थव्यवस्था तथा गांधीवादी अर्थव्यवस्था का समन्वय करने का प्रयास किया। 1945 में राष्ट्रीय नियोजन समिति के समक्ष अपने विचार व्यक्त करते हुए उन्होंने कुटीर उद्योगों तथा रोजगार की समस्या पर बल दिया था।

अपनी समाजवादी अवधारणा पर चलते हुए नेहरू ने मिश्रित आर्थिक व्यवस्था को प्रश्रय दिया जिसमें निजी क्षेत्र और सार्वजनिक क्षेत्र समानान्तर रूप में कार्य करेंगे। उनका उद्देश्य एक ऐसे आर्थिक ढांचे का निर्माण करना था जो बिना व्यक्तिगत एकाधिकार तथा पूंजी के केन्द्रीकरण के अधिकतम उत्पादन प्रदान कर सके और शहरी एवं ग्रामीण अर्थ व्यवस्था में उपयुक्त सन्तुलन पैदा कर सके। नेहरू ने जीवन, समाज और सरकार के सम्बन्ध में समाजवाद तथा लोकतान्त्रिक साधनों के माध्यम से समाजवादी समाज की स्थापना में निष्ठा प्रकट की। 1958 में 'समाजवाद' पर विचार प्रकट करते हुए उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कहा –''मैं उस उग्र प्रकार का समाजवाद नहीं चाहता जिसमें राज्य सर्व शक्तिसम्पन होता है।'' अपने समाजवाद की स्थापना के लिए नेहरू बल प्रयोग या हिंसात्मक साधनों के विरूद्ध थे। हमारे सामने प्रश्न यह है कि शान्तिपूर्ण तथा न्यायोचित उपायों से गणतन्त्र और समाजवाद को एक साथ कैसे संयुक्त किया जाय। भारत के सामने यही समस्या उपस्थित है। हम इस उद्देश्य को बलपूर्वक अथवा दबाव से पूरा नहीं कर सकते। हमें लोगों की सद्भावना तथा सहयोग प्राप्त करना है।''

यह बात स्पष्ट है कि नेहरू समाजवाद में विश्वास करते हुए भी जनतन्त्रीय पद्धति का ही समर्थन करते थे। भावनात्मक स्तर पर तो नेहरू का झुकाव लोकतन्त्र की ओर था। समाजवाद के प्रति उनका आकर्षण बौद्धिक था–मार्क्स द्वारा की गयी इतिहास की आर्थिक विवेचना में विश्वास के कारण। अतः समाजवाद को ग्रहण कर लेने पर भी उन्होंने लोकतन्त्र को कभी नहीं छोड़ा।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची –

1. जवाहरलाल नेहरू, द डिस्कवरी ऑफ इण्डिया
2. जवाहरलाल नेहरू, ए बन्च ऑफ लेटर्स
3. जवाहरलाल नेहरू, प्रेसिडेन्शियल एड्रेस एट द लखनऊ कांग्रेस, 1936
4. जवाहरलाल नेहरू, ऑटोबायग्राफी

भारत में राष्ट्रीय एकता के समक्ष चुनौतियां

डॉ0 हरिओम मिश्र
सहायक आचार्य, समाजशास्त्र विभाग,
उदित नारायण पी0जी0कालेज,
पडरौना, कुशीनगर (उ0प्र0)

राष्ट्रीय एकता एक बहुआयामी अवधारणा है, जिसके सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक इत्यादि अनेक पक्ष हो सकते हैं। फिर भी अपने मूल रूप में यह ऐसी सामुदायिक या राष्ट्रीयता की भावना है जो विविध समुदायों को एकता के सूत्र में पिरोती है ताकि संस्कृतियों, जातियों, भाषाओं एवं धर्मों के अन्तर को भावनात्मक दृष्टि से सम्पूर्ण इकाई के रूप में ग्रहण किया जा सके और उस इकाई के समस्त निवासी वो चाहे किसी भी धर्म, भाषा या जाति से सम्बन्धित हों अपने देश से प्रेम करें और उसकी उन्नति चाहें। महात्मा गांधी ने इस भावना की अभिव्यक्ति करते हुए कहा कि राष्ट्रीय एकता सामान्य उद्देश्य, सामान्य ध्येय और सामान्य दुःखों की अनुभूति है। इसकी प्राप्ति का सर्वोत्तम मार्ग परस्पर सहिष्णुता और सहानुभूति के साथ एक दुसरे के दुःखों को बांटते हुए सामान्य ध्येय की प्राप्ति में सहयोग करता है।

राष्ट्रीय एकता का उद्देश्य समाज में ऐसी भावना का विकास करना है जिससे स्थानीयता, जातीयता, धार्मिक और भाषाई आस्थाओं से ऊपर उठकर व्यक्ति राष्ट्रीय संदर्भ में सोचने लगे और सामुदायिकता का विकास हो सके। जय प्रकाश नारायण के अनुसार एक राष्ट्र के पास राज्य और निश्चित भू–सीमा होते हुए भी राष्ट्रीयता के सार तत्व का अभाव हो सकता है। यह सार तत्व ही राष्ट्रीय चेतना अथवा राष्ट्रीय संवेग है। अतः हमारे देश में जब भी हम राष्ट्रीय एकता की बात करते हैं तो मूलतः हमारा अर्थ इसी राष्ट्रीयता की चेतना का विकास करने से होता है। परन्तु इस चेतना अथवा अनुभूति का विकास अत्यंत कठिन है और प्रत्येक समाज में इनके लिए एक भिन्न प्रकार की ऐतिहासिक परिस्थितियां उत्तरदायी होंती हैं।

समाजशास्त्री जी.एस. घुरिये ने इस सन्दर्भ में कहा है कि राष्ट्रीय एकता एक मनोवैज्ञानिक और शैक्षिक प्रक्रिया है जो लोगों के दिलों में एकात्मकता, संगठन और एकबद्धता की भावना, सामान्य नागरिकता की भावना और राष्ट्र के प्रति निष्ठा की भावना के विकास को स्वयं में समाविष्ट किए हुए होती है।

इकबाल नारायण ने कहा है कि राष्ट्रीय एकता एक ही समय में समाजवादी एवं बहुआयामी है। यह समग्रवादी इसलिए है क्योंकि राष्ट्रीय एकता स्वयं में समाज, संस्कृति, अर्थशास्त्र, राजनीति, प्रशासन और यहां तक कि शिक्षा तक की समाविष्ट किए है। यह बहुआयामी भी है क्योंकि यह सांस्कृतिक, राजनीतिक, प्रशासनिक, आर्थिक और भावात्मक एकीकरण से भी सम्बद्ध है। इस प्रकार राष्ट्रीय एकीकरण की प्रक्रिया का अन्तिम उद्देश्य वर्तमान विघटित समुदाय के स्थान पर भावात्मक रूप से एकीकृत नई सामाजिक व्यवस्था की स्थापना है। जवाहर लाल नेहरू इसी भावात्मक एकता

को महत्व देते हुए यह कामना करते थे कि भारतीय जनता का भावात्मक एकीकरण हो ताकि हम अपनी अद्भुत विविधता को बनाए रखते हुए भी एक मजबूत राष्ट्रीय इकाई से बंधे हों।

इसी भाव को अभिव्यक्त करते हुए राष्ट्रीय एकता सम्मेलन 1961, ने राष्ट्रीय एकता के सम्बन्ध में कहा है कि, राष्ट्रीय एकता एक मनोवैज्ञानिक और शैक्षिक प्रक्रिया है जिसके द्वारा सभी लोगों के दिलों में एकता की भावना, समान नागरिकता का अनुभव और राष्ट्र के प्रति प्रेम की भावना को विकसित किया जाता है। स्पष्ट हैं कि राष्ट्रीय एकता का सम्बन्ध हृदय से है जिसके साथ अनुभूति और निष्ठा के प्रश्न जुड़े हैं। अतः यदि देश में एकता लानी है तो हृदय परिवर्तन अनिवार्य है जिससे भावनाओं में भी परिवर्तन लाया जा सके और संकुचित एवं प्रांतीय निष्ठाओं के स्थान पर बृहद् राष्ट्र के प्रति निष्ठा को सर्वोपरि बनाया जा सके। यह कार्य सभाओं और भाषणों मात्र से ही सम्पन्न नहीं हो सकता। इसके लिए राष्ट्रोपयोगी संस्कारों को विकसित करने की आवश्यकता है।

राष्ट्रीय एकता की समस्या विश्वव्यापी है और प्रत्येक विविधता युक्त राष्ट्र इस समस्या का अपने–अपने तरीके से सामना कर रहे हैं परन्तु भारत के लिए यह समस्या और भी गहन है एवं राष्ट्रवाद के विकास का ही एक अभिन्न भाग है। राष्ट्रवाद का विकास दो भिन्न अवस्थाओं में होता है। प्रथम साम्राज्यवाद विरोधी संघर्ष की अवस्था में, जहां राष्ट्रवाद का एक मात्र उद्देश्य एक स्वतंत्र संप्रभु राज्य की स्थापना करना होता है और द्वितीय, समाज की राष्ट्र के रूप में एकीकरण की अवस्था जहां उस नव स्वतंत्र राज्य के निवासियों को एक राष्ट्र के नागरिक के रूप में परिवर्तन करना होता है। यही राष्ट्रीय एकता की प्रक्रिया है जो राष्ट्रवाद की द्वितीय अवस्था है और नव स्वतंत्र राष्ट्रों के लिए अत्यंत जटिल भी है क्योंकि उन्हें इस राष्ट्र निर्माण के साथ–साथ एक ही समय पर आर्थिक विकास, सामाजिक न्याय, राजनीतिक विकास, लोकतांत्रीकरण और आधुनिकीकरण की दिशा में भी प्रयत्न करने पड़ते हैं। इस अद्भुत बहुआयामी विकास की प्रक्रिया कभी–कभी अत्यंत गहन एवं जटिल अंतः क्रिया को जन्म देती है जो एकीकरण के स्थान पर असंतोष और अलगाव को इतना बढ़ा देती है कि राजनीतिक समुदाय का अस्तित्व ही संकट में पड़ जाता है।

भारत में राष्ट्रीय एकता का प्रश्न और भी जटिल है क्योंकि धर्म, भाषा और संस्कृति के साथ जातियों की विविधता भी भारतीय समाज की पारम्परिक विशिष्टता है जो भारतीय समाज के एकता मार्ग में बाधक है। विदेशी शासन और उनकी फूट डालने वाली नीतियों ने एकता के मार्ग को और भी लंबा एवं दुर्गम बना दिया। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् भारत के राष्ट्रीय नेताओं ने इस कार्य को सर्वोच्च प्राथमिकता प्रदान किया। इस सन्दर्भ में 1952 में पं0 नेहरू का यह कहना प्रासंगिक होगा कि हमें भारत में एकता की भावना के विकास के कार्य को सर्वोच्च प्रथमिकता देनी चाहिए क्योंकि यह कठिन समय है। ऐसा कोई भी निर्णय जो इस एकता के मार्ग में रूकावट डाले तब तक के लिए स्थगित कर देना चाहिए, जब तक कि राष्ट्रीय एकता की मजबूत नींव न रखी जा चुकी हो। परन्तु पं0 नेहरू ने यह भी स्पष्ट कर दिया कि एकता की यह भावना लोकतांत्रिक मार्ग से ही विकसित की जानी चाहिए। अतः इसका स्वरूप विविधता में एकता होना चाहिए, अर्थात् एकता की भावना विविधता के प्रति सहिष्णुता और सम्मान पर ही आधारित होनी चाहिए। यही बात संविधान सभा में भी प्रतिध्वनित हुयी। परिणामस्वरूप भारतीय संविधान में राष्ट्रीय एकता और अखण्डता को अपनी प्रस्तावना में महत्वपूर्ण स्थान देते हुए भी सभी विविध, धार्मिक, जातीय, नृ–जातीय और भाषाई

समुदायों को उनकी परम्परागत स्थिति को ध्यान में न रखते हुए समान राजनीतिक सहभागिता का अधिकार प्रदान करता है और विशेष तौर पर पिछड़े अथवा दुर्बल समुदायों के लिए राज्य की ओर से विशेष संरक्षण एवं प्रोत्साहन प्रदान करने का प्रावधान भी करता है।

रजनी कोठारी ने प्रारम्भिक भारतीय नेतृत्व के इन लोकतान्त्रिक विकल्पों के चुनाव की प्रशंसा की है क्योंकि उनके अनुसार कार्य की विशालता और समस्याओं की जटिलताओं को देखते हुए यदि तानाशाही का माध्यम भी अपनाया गया होता तो भी न्याय संगत माना जाता परन्तु यह निश्चय ही प्रशंसनीय है कि भारतीय नेतृत्व ने भारतीय समाज की विविधता में एकता, सामाजिक न्याय और आर्थिक विकास के अपने प्रयत्न खुले लोकतान्त्रिक परिप्रेक्ष्य में ही आगे बढ़ाए हैं।

भारत में राष्ट्रीयता, राष्ट्र निर्माण एवं राष्ट्रीय एकता स्थापित करने के लिए जो प्रयास किए गए है, उनमें अधिक सफलता नही मिल पाई है। यद्यपि ये प्रयास अंग्रेजी शासन काल में प्रारम्भ हुए तथा स्वतंत्रता के पश्चात् भी इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए योजनाबद्ध रूप से प्रयास किया गया, फिर भी भारत में राष्ट्र निर्माण की प्रक्रिया में तीव्रता नही आ पाई है। आज भी हमारा देश राष्ट्र निर्माण, राष्ट्रीयता की भावनाओं एवं राष्ट्रीय एकता की दृष्टि से पश्चिमी देशों से बहुत पिछड़ा हुआ है। इसका प्रमुख करण राष्ट्रीय एकता के समक्ष आने वाली कुछ प्रमुख चुनौतियां है, जिनका सन्तोष जनक निराकरण अभी तक नही हो पाया है। इन चुनौतियों में मुख्यतया जातिवाद, साम्प्रदायिकता, प्रादेशिकता, भाषावाद, अत्यधिक आर्थिक असमानता, भ्रष्टाचार एवं काला धन, नैतिकता का अभाव, जनजातिवाद, नक्सलवाद एवं आतंकवाद, राजनीति का अपराधीकरण इत्यादि सम्मिलित है।

भारत में राष्ट्रीय एकता के मार्ग में अनेक सामाजिक, सांस्कृतिक, भौगोलिक, आर्थिक एवं राजनैतिक चुनौतियां हैं, जिनके कारण इसकी गति बहुत धीमी रही है। इसी कारण भारत में राष्ट्रीयता की भावना, राष्ट्र के प्रति निष्ठा, समर्पण और प्रतिबद्धता की भावनाएँ भी दुर्बल हैं। भारत में राष्ट्रीय एकता की प्रक्रिया को और अधिक प्रबल बनाने के लिए अनेक सरकारी एवं गैर सरकारी प्रयास करते हुए इसके मार्ग में आने वाली प्रमुख चुनौतियों को समाप्त करने के लिए निरन्तर प्रयास किए जा रहे हैं। जातिवाद, प्रादेशिकता तथा सम्प्रदायिकता जैसी व्याधियों को समाप्त करने के लिए सरकार ने अनेक प्रयास किये हैं। वास्तव में ये कुरीतियां कुछ सीमा तक स्थानीय स्वायत्तता के कारण ही विकसित हुयी तथा राष्ट्रीय एकता परिषद एवं अखिल भारतीय साम्प्रदायिकता विरोधी समिति तथा राष्ट्रीय एकता कार्य दलों का निर्माण करके सरकार ने इनकी प्रकृति को समझने तथा इन प्रवृत्तियों पर अंकुश लगाने का प्रयास किया है। हमें यह नही भूलना चाहिए कि भारत एक धर्म निरपेक्ष लोकतान्त्रिक राज्य है तथा आधुनिक शिक्षा के प्रचार व सभी धर्मो को प्रत्येक क्षेत्र में समानता के अवसर प्रदान करके भारतीय संविधान ने अल्पसंख्यकों को सामाजिक सुरक्षा प्रदान की है तथा साम्प्रदाायिक एवं सामाजिक तनाव को समाप्त करने के प्रयास किए हैं।

प्रख्यात समाजशास्त्री एम0एन0 श्रीनिवास ने छोटे राज्यों को राष्ट्र निर्माण तथा राष्ट्रीय एकता में सहायक बताया है क्योंकि इनसे कुशलता एवं विकास में वृद्धि होती है तथा लोगों को योजनाओं में सहभागिता के लिए प्रेरित करना सरल हो जाता है। उत्तरी पूर्वी क्षेत्र में छोटे राज्यों के निर्माण से राष्ट्रीय एकता में वृद्धि हुयी है तथा हरियाणा में हुआ विकास भी छोटे राज्यों के प्रभावशाली प्रशासन का सूचक है। विभिन्न वर्गो एवं सम्प्रदायों में सहयोग को प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए तथा शिक्षा के

पाठ्य क्रम को इस प्रकार से बनाया जाना चाहिए कि इसके माध्यम से राष्ट्र के प्रति निष्ठा, समर्पण एवं प्रतिबद्धता की भावनाएं विकसित हों। राष्ट्रीय एकता के लिए आधुनिकीकरण, केन्द्र राज्यों में मधुर सम्बन्ध तथा राजनीतिक दलों के समन्वित प्रयासों को आधार बनाया जाना चाहिए ताकि सभी वर्गो एवं सम्प्रदायों के लोग मिलकर राष्ट्रीय एकता में भाग ले सकें एवं इसके समक्ष उपस्थित चुनौतियों का सामना कर सकें।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची–

- शर्मा जी. एल., 2015, सामाजिक मुद्दे, रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर,
- आहूजा राम, 1999, भारतीय सामाजिक व्यवस्था, रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर
- गुप्ता मोतीलाल, 2013,भारत में समाज, राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर
- जैन योगेश चन्द, निबन्धमाला, अरिहन्त पब्लिकेशन्स (इण्डिया) लिमिटेड

सामाजिक न्याय के महान योद्धा डॉ0 भीम राव अम्बेडकर

डॉ0 चित्रलेखा कुमारी
ग्राम–अमेठ पोस्ट–भिटी
जिला–कैमूर, बिहार

जो लोग समाजवादी साहित्य से परिचित रहे हैं और जिन लोगां का सम्बन्ध समाजवादी कार्यक्रम स्वीकार करने वाले राजनैतिक दलों से रहा है, उनके लिए सामाजिक न्याय एक अपरिचित शब्द नहीं है। सामाजिक न्याय का विस्तृत अर्थ है–मानवता का कल्याण। यह एक ऐसा शब्द है जो हर उस व्यक्ति को स्वीकार्य है जो यह विश्वास करता है कि अन्याय, जुल्म, शोषण का विरोध होना चाहिए, चाहे वह समाज के किसी भी क्षेत्र से संबंधित हो। अतः सामाजिक न्याय का मूलमंत्र है सभी मनुष्य समान है और सबको सम्मान पूर्वक जीवन जीने का अधिकार है। समाज की तरफ से प्रत्येक व्यक्ति को आगे बढ़ते और प्रगति करने का समान अवसर मिलना चाहिए किसी वर्ग विशेष का शोषण एवं अधिकार हनन नहीं होना चाहिए। सबको स्वेच्छा से अपनी जीविकोपार्जन का साधन चुनने एवं अपना सर्वांगीण विकास करने की स्वतंत्रता होनी चाहिए।

भारतीय संविधान की प्रस्तावना में कुछ शब्दों का प्रयोग किया गया है, जिसमें समस्त नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय, विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतंत्रता, प्रतिष्ठा और अवसर की समता'' प्राप्त कराने का आश्वासन दिया गया है और यह उद्देश्य केवल प्रस्तावना में ही नहीं है बल्कि संविधान के नीति–निर्देशक तत्व संबंधी अध्याय के अनुच्छेद–38 और 46 में विशेष रूप से और अन्य अनुच्छेदों में व्याख्या के रूप में वर्णित है।

संविधान सभा में संविधान के प्रारूप पर चर्चा प्रारंभ हुई तो डॉ0 अम्बेडकर ने इस अध्याय के महत्व और उसकी विशेषता बताते हुए 4 नवम्बर, 1948 को अपने भाषण में कहा था ''संविधान के प्रारूप में मूल अधिकारों के बाद वे आते हैं जिन्हें राज्य के नीति–निर्देशक तत्व कहा गया है। संसदीय लोकतंत्र के लिए बनाए गए संविधान में यह एक नई विशेषता है। संसदीय लोकतंत्र के लिए बनाया गया एक ही ऐसा अन्य संविधान है जहाँ ये सिद्धान्त सम्मिलित किये गये हैं और वह आयरिश फ्री स्टेट का है।'' इन सिद्धान्तों की आलोचना का उत्तर देते हुए उन्होंने कहा कि यह कहा जाता है कि निर्देशक सिद्धांतों के पीछे कोई कानूनी बल नहीं है। मैं इसे स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं हूँ लेकिन मैं यह स्वीकार करने के लिए तैयार हूँ कि इसके कारण उनकी कोई बाध्यता नहीं है, न मैं यह स्वीकार करने के लिए तैयार हूँ कि चूंकि उनकी कानूनी बाध्यता नहीं है इसलिए वे बेकार हैं। उन्होंने भाषण के अन्त में कहा था कि लोकतंत्र में जो भी सता प्राप्त करेगा उसे इन तत्वों का सम्मान करना पड़ेगा। उसे इन्हें भंग करने के बारे में किसी अदालत में भले ही जवाब न देना पड़े, पर चुनाव के समय उसे मतदाताओं के समक्ष इसके लिए जवाब देना पड़ेगा। इन निर्देशक सिद्धांतों का कितना महत्व है इसका ठीक–ठीक मूल्यांकन उस समय होगा जब दक्षिण पंथी शक्तियाँ सत्ता का अपने कब्जे में करने का प्रयास करेंगी ।

चाण्डी के0 टी0 ने सामाजिक न्याय को परिभाषित करते हुए लिखा है कि–''सामाजिक न्याय

का अर्थ है–समाज के सभी व्यक्तियों को अपने जीवन अस्तित्व को बनाये रखने तथा व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास के लिए अवसर की समानता प्राप्त हो।'' अर्थात् व्यक्ति को जीवित रहने के लिए उसकी बुनियादी आवश्यकताओं–भोजन, वस्त्र एवं आवास की पूर्ति होना आवश्यक है।

स्वतंत्र भारत के संविधान में स्वतंत्रता, समानता और सामाजिक न्याय के आधार पर नवीन समाज की इमारत बनाने की परिकल्पना की गयी। संविधान में जन्म, आयु, लिंग, व्यवसाय का चयन, अन्तरजातीय–विवाह संबंधी भेदों एवं बाध्यताओं को समाप्त कर भारत के परम्परागत व्यवस्था–जातितंत्र के जन्मगत, व्यावसायिक, आर्थिक एवं सामाजिक आधारों को नष्ट कर दिया गया और इस तरह संविधान में जातीय निषेध को निषिद्ध कर दिया गया। इसी प्रकार जन्मजात राजतंत्र या सामंती व्यवस्था को पंचायती राज तथा आरक्षण द्वारा ध्वस्त कर दिया गया और जाति विहीन सामाजिक न्याय की स्थापना का मार्ग प्रशस्त हुआ।

भारत में सामाजिक न्याय की स्थापना एवं इसके मजबूत स्तम्भ का तरीका अनूठा रहा है जिसका आधार तीन मौलिक मान्यताओं पर टिका हुआ है–

1. विधान, जो कि लोकतांत्रिक तरीके से निर्मित हो, के माध्यम से न्यायपूर्ण समाजकी स्थापना करना।
2. बिना नागरिक भेद के धारण को ध्यान दिये समाज में सदियों से दबे, कुचले एवं पिछड़े तथा नियोग्यताओं से युक्त वर्गों को क्षतिपूर्ति एवं विशेष रक्षोपायो को प्रदान करना।
3. क्षतिपूर्ति प्राथमिकता की प्रकृति अस्थायी, अपवाद स्वरूप और सीमित होनी चाहिए, जिससे सामाजिक न्याय के बुनियादी सिद्धान्त समानता के प्रति प्रतिबद्धता का उल्लंघन नहीं हो और न ही यह वर्गीय दबावों के तले साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व की पद्धति में परिणत हो सके।

इससे स्पष्ट होता है कि सामाजिक न्याय से स्वतंत्रता को अलग नहीं रखा जा सकता फिर भी यह समानता (मुख्यत आर्थिक एवं सामाजिक) के अधिक निकट है। वैसे भी सामाजिक न्याय का कोई अर्थ नहीं रह जाता, जहाँ पर विषमता या असमानता की खाई अधिक हो। इस दृष्टि से सामाजिक न्याय का तात्पर्य है–सामाजिक एवं आर्थिक क्षेत्रों में समानता की स्थापना करना। स्वतंत्रता एवं समानता सामाजिक न्याय के मूलभूत तत्व हैं।

डॉ0 अम्बेडकर ने भारत में सामाजिक न्याय स्थापित करने के लिए अस्पृश्यता, छुआछूत को मिटाना अनिवार्य मानते थे। इस निमित उन्होंने अछूतोद्धार आंदोलन को बल, तीव्र गति एवं नयी दिशा प्रदान करने के लिए सर्वप्रथम अछूतों के इतिहास का अध्ययन किया। अध्ययनोपरांत डॉ0 अम्बेडकर ने 1920 में एक सामाजिक संगठन वहिष्कृत हितकारिणी सभा बनाये। लोगों को संगठित कर समझाना शुरू किये। 1925 में बम्बई अस्पृश्य परिषद की स्थापना किये जिसका उद्देश्य स्वरक्षा और अस्पृश्यता उन्मूलन आंदोलन को तीव्र करना था। बहिष्कृत भारत नामक समाचार पत्र भी निकाले जिसका उद्देश्य अछूतों की आवाज उपर उठाना था। इसी कड़ी में मूकनायक पत्र भी प्रकाशित किये।

डॉ0 अम्बेडकर ने मालवण गांव की सभा में बोलते हुए उन्होंने कहा कि यदि तुम जीना चाहते हो तो जिन्दा दिली के साथ जिओं। इसी देश में जो अन्य नागरिकों को अन्न, वस्त्र और मकान की सुविधाएं उपलब्ध हैं तुम्हें भी प्राप्त होनी चाहिए। यह तुम्हारा जन्मसिद्ध अधिकार है। इन

मानवीय अधिकारों को प्राप्त करने के लिए तुम्हें ही आगे आना होगा और संगठित होकर कार्य करना होगा।

भारतीय समाज में व्याप्त अस्पृश्यता को डॉ0 अम्बेडकर दास प्रथा से भी बुरा मानते थे–अस्पृश्यता और दास प्रथा में अंतर है, जिससे अस्पृश्यता एक परतंत्र सामाजिक व्यवस्था की सबसे खराब मिसाल बन जाती है। दास प्रथा कभी बाध्यकारी नहीं थी किन्तु अस्पृश्यता बाध्यकारी है। कोई व्यक्ति किसी अन्य व्यक्ति को अपने दास के रूप में रख सकता है। उस पर ऐसी कोई बाध्यता नहीं है कि वह नहीं चाहने पर भी रखे किन्तु अछुत के पास कोई विकल्प नहीं है। एक अछूत के रूप में पैदा होने पर अछूत की सारी अयोग्यताएं उसे मिल जाती है। दास प्रथा को कानून छुटकारे की इजाजत दता है। एक बार का गुलाम, हमेशा गुलाम–यह गुलाम की नियति नहीं थी। अस्पृश्यता से बच निकलने का कोई रास्ता नहीं एक बार अछूत हमेशा अछूत इस प्रकार डॉ0 अम्बेडकर दास प्रथा को अस्पृश्यता से सौगुना बेहतर मानते थे।

डॉ0 भीमराव अम्बेडकर ने लिखा है कि ''हम कुछ विश्वास के साथ कह सकते है अस्पृश्यता की उत्पति ईसा की मृत्यु के 400 वर्ष बाद हुई। इसकी उत्पति ब्राह्मणवाद एवं बौद्ध धर्म में प्रभुता की लड़ाई के लिए जो संघर्ष हुआ उसके कारण हुई जिसने भारत के इतिहास को पूर्ण रूप से बदल दिया तथा भारतीय इतिहास के छात्रों ने इस पर अध्ययन करने की जरूरत नहीं समझी और इसे तिरस्कृत किया। डॉ0 अम्बेडकर ने जो सामाजिक न्याय का स्वप्न देखा था वह दलित वर्ग का उत्थान था।

आज दलित वर्ग के संदर्भ में सामाजिक न्याय पर विचार करें तो यह केवल आरक्षण तक सीमित हो गया है। सामाजिक न्याय लाने में आरक्षण की नीति एक शुरूआत हो सकती है। परंतु दलितों का सम्पूर्ण उत्थान इससे नहीं हो सकता। यदि हम दलितों का उत्थान चाहते हैं तो यह आवश्यक है कि समाज में सामाजिक न्याय की स्थापना उसमें मौलिक अर्थ में हो और हम निःस्वार्थ भाव से इसकी रचनात्मक सुधार करें। समानता और भाईचारे की भावना विकसित कर। डॉ0 अम्बेडकर का विचार था कि समाज में पिछड़े व शोषितों के साथ उस प्रकार व्यवहार किया जाये कि उन्हें सामाजिक उपेक्षा का शिकार न होना पड़े।

इस प्रकार हम देखते हैं कि भारत में सामाजिक न्याय स्थापित करने के लिए डॉ0 भीमराव अम्बेडकर आजीवन संघर्ष करते रहे। सामाजिक अन्याय को स्वयं उन्होंने भोगा था। उन्हें इसका कटु अनुभव था। इसलिए जब उनको भारतीय संविधान सभा के प्रारूप समिति का अध्यक्ष बनाया गया तो संविधान तैयारी की सारी जिम्मेदारी (प्रारूप) संभालते हुए भारत में सामाजिक न्याय स्थापित करने का पूरा प्रयास कानून बनाकर किये।

डॉ0 अम्बेडकर सामाजिक न्याय स्थापित करने के लिए छुआछूत को मिटाने के लिए दृढ़ निश्चय कर लिये थे कि–''मैं भारतीय समाज के इस कोढ़ इस अछूतपन को समूल रूप से मिटाने के लिए जीवन भर संघर्ष करूँगा और इसके लिए कोई भी सरकारी अथवा अर्द्धसरकारी नौकरी ग्रहण नहीं करूगा। मेरे लोगों के साथ जो अपमानजनक, असम्मानित अमानवीय और अधार्मिक आचरण होता है उसे मिटाने का भरसक प्रयत्न करूँगा। ''भारत में सामाजिक न्याय के लिए इनके पहले इतना अधिक व्यवस्थित प्रयास किसी में नही किया। सामाजिक न्याय स्थापित करने में डॉ0 भीमराव

अम्बेडकर के प्रयास इतिहास के स्वर्णिम अक्षरों में लिखे जायेंगे जो काफी सराहनीय है।

संदर्भ सूचीः–

1. सामाजिक न्याय एवं दलित वर्ग, डॉ0 मालिनी वर्मा।
2. सामाजिक न्याय और भारतीय संविधान, परीक्षा मंथन सामयिक निबंध भाग–1
3. भारत में सामाजिक न्याय–एक अवधारणात्मक विवेचना, श्रीमती वंदना ओझा, ज्ञानदायिनी समाज विज्ञान शोध पत्रिका, अंक 1, वर्ष 2011
4. सामाजिक न्याय में डॉ0 भीमराव अम्बेडकर की भूमिका, डॉ0 ओम प्रकाश भारतीय परमिता, जनवरी–मार्च 2009
5. योजना, मानवाधिकार और सामाजिक न्याय (विशेषांक) अप्रैल, 2011

नालंदा विश्वविद्यालय : एक ऐतिहासिक अध्ययन

डॉ0 दिनेश सिंह
असिस्टेंट प्रोफेसर
इतिहास विभाग,
भूपेश गुप्त महाविद्यालय, भभुआ
कैमूर, बिहार

नालंदा महाविहार विश्वविद्यालय जो कभी, अतीत में पूरे विश्व को ज्ञान का प्रकाश दिया था, जिसे विश्व में पहले पूर्णतः विकसित आवासीय विश्वविद्यालय का दर्जा प्राप्त है, को आज एक बार फिर राज्य सरकार के प्रयास से अतीत के 'गौरव' लौटाने के लिए नालंदा अन्तर्राष्ट्रीय विश्वविद्यालय के रूप में पुनर्स्थापित किया जा रहा है।[1] यह प्राचीन विश्वविद्यालय बिहार की राजधानी पटना से 88.5 किमी0 दक्षिण–पूर्व तथा राजगीर से 11.5 किमी0 उत्तर में अवस्थित है। इसे नाल, नाल का ग्राम, नालंदा आदि कई नामों से भी प्राचीनकाल से जाना जाता है लेकिन आज यह नालंदा खण्डहर के नाम से प्रचलित है।[2] जनरल कनिंघम ने इस स्थान का नाम आधुनिक बड़ा गाँव रखा है।[3] नलम (कमल) व दा (दाता शब्दों के मेल से बने) नालंदा को ज्ञानदाता भी कहा जाता है। नालंदा का 2500 वर्षों से अधिक का लिखित इतिहास उपलब्ध है। नालंदा महाविहार विश्वविद्यालय दुनिया में उस समय स्थापित हुआ था जब कोई दूसरा विश्वविद्यालय नहीं थी।[4] यह यूरोप के सबसे पुराने विश्वविद्यालय बोलोगाना (इटली) से भी 600 साल पुराना शिक्षण संस्थान था।[5] मिस्र का अल अजहर विश्वविद्यालय भी इससे 500 साल छोटा था। जिस समय इस विश्वविद्यालय का पतन हो रहा था, उस समय अभी ऑक्सफोर्ड और कैंब्रिज विश्वविद्यालय का जन्म हो रहा था।6

प्राचीन भारतीय विश्वविद्यालयों की स्थापना में बौद्ध धर्म की भूमिका महत्वपूर्ण थी। इन्हीं विश्वविद्यालयों में नालंदा महाविहार विश्वविद्यालय अपना अग्रणी स्थान रखता था। यह पूरी दुनिया का सबसे बड़ा बौद्ध अध्ययन केन्द्र रहा है। यहाँ पर जापान, चीन, तिब्बत, जावा, सुमात्रा, कोरिया, ईरान, अरब, ग्रीस एवं इंडोनेशिया आदि दूर–दूर देशों से छात्र आते थे जो तर्कशास्त्र, गणित, औषधि एवं चिकित्साशास्त्र, खगोलशास्त्र, दर्शन, व्याकरण, आत्मतत्वज्ञान, कला एवं शिल्प की शिक्षा प्राप्त करते थे। इस विश्वविद्यालय का स्तर अन्य देशों के मुकाबले काफी ऊँचा था और इसी वजह से दूर दराज देशों के छात्र आकर्षित हो, शिक्षा ग्रहण करने के लिए आते थे जबकि उन दिनों यात्रा काफी कठिन होने के कारण जानलेवा भी होती थी।[7]

विदेशों से सांस्कृतिक सम्बन्ध बनाये रखने में नालंदा विश्वविद्यालय की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। तिब्बती इतिहासकार तारानाथ ने लिखा है कि मगध सम्राट देवानांप्रिय प्रियदर्शी सम्राट अशोकवर्द्धन ने नालंदा की पवित्र भूमि पर पहुँचकर भगवान बुद्ध के प्रिय शिष्य सारिपुत्र की जन्म स्थली को नमन किया और यहाँ पर एक बड़ा विहार बनवाकर भिक्षुओं को दान दिया था जो कालांतर में नालंदा महाविहार विश्वविद्यालय के नाम से प्रसिद्ध हुआ।[8]

प्राचीन नालंदा विश्वविद्यालय की स्थापना गुप्त शासक कुमार गुप्त महेन्द्रादित्य (415–454ई0) ने की थी जिसे प्रसिद्ध चीनी यात्री ह्वेनसांग ने 'शक्रादित्य' भी कहा है।[9] इस विश्वविद्यालय को हर्षवर्द्धन और पाल शासकों का संरक्षण मिला जिससे यह अपने गौरवशाली वैभव को प्राप्त किया। ज्ञान के इस प्राचीनतम महातीर्थ का बौद्ध धर्म ने अपने शैशवावस्था में ही बीज आरोपित किय, जो मौर्यकाल, फिर गुप्तकाल एवं अंत में वर्द्धनकाल में सम्राट हर्षवर्द्धन के समय बढ़कर एक विशाल वट वृक्ष का रूप धारण कर लिया।[10]

प्रायः सभी चीनी यात्रियों ने नालंदा विश्वविद्यालय की भव्यता, सुन्दरता एवं वैभव का बखान किया है। हर्षवर्द्धन के काल में आये प्रसिद्ध चीनी यात्री ह्वेनसांग जो अपने जीवन का महत्वपूर्ण 12 वर्ष विद्यार्थी एवं शिक्षक के रूप में व्यतीत किया था।[11] ने इसका विस्तृत वर्णन किया है। इस विश्वविद्यालय की अपनी मुद्रा थी, जिस पर श्री नालंदा महाविहार आर्य भिक्षु संघस्थ उत्कीर्ण था।[12] नालंदा विश्वविद्यालय का परिसर काफी विस्तृत था, जिसकी लम्बाई दो मील और चौड़ाई एक मील थी और यह चहारदीवारी से बंधा था। सम्राट हर्षवर्द्धन ने इस विश्वविद्यालय के प्रवेश द्वार के पास विशाल बिहार स्तम्भ बनवाया था, जो 100 फीट ऊँचा था और पीतल की परत से ढंका हुआ था। विश्वविद्यालय की स्थापना में विदेशों से भी अपार धनराशि प्राप्त हुई थी जिससे इसके निर्माण में कहीं कोई व्यवधान नहीं आया और भवनों की सजावट अन्तरराष्ट्रीय मानकों के आधार पर की गई। ऐतिहासिक विवरणों से पता चलता है कि इस विश्वविद्यालय में आठ मुख्य विशाल भवन थे। ये सभी भवन एक पंक्ति में बने थे। ह्वेनसांग ने छः विशाल मठों के बारे में लिखा है, जिनमें पांच गुप्त शासकों ने और एक सम्राट हर्षवर्द्धन ने बनवाया था। इन इमारतों के अलावा अनेक अन्य इमारतें थीं जिनमें प्रमुखतः विशाल पुस्तकालय, मंदिर, चैत्य, प्रशासनिक भवन इत्यादि सम्मिलित थे। इन इमारतों का निर्माण एवं नवीकरण पांचवी शताब्दी से लेकर 700 वर्षों तक अनवरत जारी रहा।[13] विश्वविद्यालय का छात्रावास सड़क के किनारे एक पंक्ति में दक्षिण से उत्तर दिशा की ओर बने थे। प्रत्येक छात्रावास एक चतुष्कोणीय परिसर में स्थित था और सभी में एक निश्चित स्थान पर पीने योग्य पानी का कुआँ था। छात्रावास के प्रत्येक कमरे में एक पत्थर का एक तख्त भिक्षु के सोने के लिए और एक आलमारी सामान रखने के लिए हुआ करता था साथ ही प्रत्येक छात्रावास का द्वार प्रार्थनालय की ओर खुलता था।[14] ह्वेनसांग आचार्य शीलभद्र के समय इस विश्वविद्यालय में आया था और उसने छः वर्षों तक अध्ययन किया। अपने विवरण में उल्लेख किया है कि यहाँ (10000) दस हजार विद्यार्थी और (1510) एक हजार पाँच सौ दस शिक्षक थे। विश्वविद्यालय का सम्पूर्ण क्षेत्र एक मोटी दीवार से घिरा था जिसके बीचोबीच एक बड़ा सिंहद्वार था। परिसर के अन्दर आठ बड़े भवन थे जो कई मंजिले थे। प्रत्येक भवन के अलग–अलग नाम थे जैसे–विहारावली, शिखरश्रेणी, अवलेही, अम्बुधर आदि। भवनों के बीच सरोवर एवं उद्यान थे।[15] प्रसिद्ध विद्वान श्री राधा कुमुद मुखर्जी ने बताया है कि नालंदा की खुदाई से ज्ञात होता है कि इसकी उत्तरी दीवार 203 फीट लम्बी और छः फीट छः इच चौड़ी थी। छोरों की दीवारें 168 फीट लम्बी तथा 7 फीट 6 इंच चौड़ी थी। ये दीवारे पक्की ईंट की बनी थी जिनका रंग हल्का पीला था। विद्यार्थियों के कमरे अलग–अलग साइज के थे। प्रत्येक कमरे में एक या दो छात्र रहते थे। छात्रों के सोने के लिए पत्थर की शिला, पुस्तक रखने के लिए पच्चियाँ तथा दीवट थे। यहाँ निःशुल्क शिक्षा, मुफ्त आवास, भोजन, अस्पताल आदि की व्यवस्था थी। इस

विश्वविद्यालय का अपना पुस्तकालय धर्मगंज (धर्मयज्ञ) प्रदेश में स्थित था। पुस्तकालय के तीन बड़े भवन थे जो क्रमशः रत्नासागर, रत्नोदधि तथा रत्नरंजक के नाम से जाना जाता था। रत्न सागर नौ मंजिला ऊँचा भवन था जिसमें धार्मिक पुस्तकों का संग्रह था। अन्य दो भवनों में कला, विज्ञान तथा अन्य विषयों से संबंधित पुस्तकें थीं।16 इन पुस्तकालयों में सामान्य तथा विशेष, दो प्रकार के कक्ष होते थे–सामान्य कक्ष में वे सभी पुस्तकें रखी होती थी, जो प्रत्येक विद्यार्थी को अनिवार्य विषय के रूप में लेना पड़ता था। विशेष कक्ष में शोध एवं अनुसंधान के लिए बहुमूल्य पांडुलिपियां और अध्ययन सामग्री रखी होती थी जो अनुसंधानकर्ताओं की आवश्यकताओं को पूरा करती थी। इन पुस्तकालयों में धर्म एवं विज्ञान की पुस्तकों के अलावा संस्कृत, पाली और प्राकृत भाषा की पुस्तकों की संख्या असंख्य थी। नालंदा से प्राप्त अवशेषों को देखकर विश्वविद्यालय उत्खन्नकर्ता कनिंघम महोदय ने कहा था यहाँ पाई गयी शिल्पकला समस्त भारत में प्राप्त कला से सुन्दर है।

प्राचीन भारतीय विश्वविद्यालयों की स्थापना में बौद्ध धर्म की भूमिका महत्वपूर्ण थी। इन्हीं विश्वविद्यालयों में नालंदा विश्वविद्यालय अपना अग्रणी स्थान रखता था। यह पूरी दुनिया का सबसे बड़ा बौद्ध अध्ययन केन्द्र था। चीनी यात्री इत्सिंग (670ई0) ने यहाँ के पाठ्य विषयों की चर्चा अपने यात्रा वृतान्त में किया है जिसके अनुसार यह विश्वविद्यालय महायान बौद्धिक शिक्षा का प्रधान केन्द्र था लेकिन यहाँ हीनयान, वैदिक तथा जैन धर्म की भी शिक्षा दी जाती थी। वेद–वंदांग, दर्शनशास्त्र, पुराण तथा चिकित्साशास्त्र का भी अध्ययन कराया जाता था। पुस्तक वाचन, भाषण एवं तर्क–वितर्क पढ़ाई के तरीके थे। बौद्ध साहित्य के मुख्य प्राध्यापकों शीलभद्र, सुधंकर परमार्थ, कुमार जीव, धमकीर्ति, जिनमित्र, गुजपति, कमलशील, चन्द्रपाल, धर्मपाल, नागार्जुन, आर्यदेव, शांतरक्षित, ज्ञानचन्द्र, पद्यसंभव, गुणमति, प्रभामित्र आदि की चर्चा इत्सिंग ने की है। इनमे से कुछ विद्वानों ने तिब्बत और चीन जाकर ज्ञान का प्रकाश फैलाया। प्रसिद्ध भारतीय गणितज्ञ आर्यभट्ट भी इस विवि के प्रमुख रहे थे।

विश्वविद्यालय का सबसे बड़ा पदाधिकारी कुलपति कहलाता था एवं विहार की देखभाल करने वाले को पंडित कहा जाता था। इस विश्वविद्यालय में प्रवेश पाना कठिन था। 20 वर्ष से नीचे के छात्रों के लिए प्रवेश निषेध था। द्वार पर एक प्रवेश पंडित होता था जो नव प्रवेशार्थी छात्रों से कठिन प्रश्न करता था। सफलता 20 प्रतिशत विद्यार्थियों को ही मिल पाती थी।17 यहाँ स्थान सीमित थे और प्रवेश लेने वाले विद्यार्थियों की संख्या बहुत अधिक थी। इसलिए आधुनिक प्रतियोगी परीक्षाओं की तरफ ही यहाँ भी प्रवेश परीक्षा आयोजित होती थी और इनमें उत्तीर्ण होना अनिवार्य था। प्रवेश परीक्षा लेने के लिए अनेक विशेषज्ञों की अध्यक्षता में दल बने हुए होते थे। इन विशेषज्ञों के द्वारा अनुशंसित विद्यार्थी ही अंतिम रूप से प्रवेश पाने के पात्र होते थे। कुल मिलाकर प्रवेश प्रक्रिया अत्यन्त कठिन थी और बहुत कम ही विद्यार्थी सफल हो पाते थी। ह्वेनसांग ने लिखा है, विदेशों से प्रवेशेच्छुक विद्यार्थियों में से अधिकांश को परीक्षा के प्रश्न इतने कठिन लगते थे कि वे स्वयं अपना नाम वापस ले लेते थे किन्तु प्राचीन एवं नवीन विधाओं में पारंगत व्यक्तियों को प्रवेश मिल जाता था। दस में से केवल दो या तीन व्यक्ति सफल होते थे।

नालंदा विश्वविद्यालय की उच्चस्तरीय शिक्षा के कारण यहाँ न केवल भारत के कोने–कोने से बल्कि कोरिया, तिब्बत, जापान, मंगोलिया, तुर्की, कम्बोडिया, श्रीलंका, फारस, सुमात्रा, बालीद्वीप, जावा, इंडोनेशिया, थाईलैण्ड आदि विदेशों से विद्यार्थी शिक्षा प्राप्त करने के लिए आते थे।

अध्ययन क लिए दो प्रकार के छात्र होते थे–एक तो वे जो विद्याध्ययन के पश्चात् बौद्ध भिक्षुक बनकर संघ में प्रवेश करते थे। दूसरे वे विद्यार्थी, जो विद्याध्ययन के पश्चात् सांसारिक जीवन में जाते थे। जो छात्र भिक्षुक बनने के इच्छुक नहीं होते थे किन्तु अध्ययन करना चाहते थे, उन्हें अ पना भोजन व्यय स्वयं उठाना पड़ता था या फिर विश्वविद्यालय के लिए शारीरिक श्रम करना होता था। विश्वविद्यालय के कार्यक्रमों का नियमन 'कर्मदान' नामक अधिकारी करता था। वही यह भी निश्चित करता था कि किस विद्यार्थी को क्या–क्या काम करना है। यदि कोई विद्यार्थी अपनी विद्वता का कोई उल्लेखनीय प्रमाण किसी क्षेत्र में दे देता तो उसे शारीरिक श्रम से मुक्ति मिल जाती थी। संघारामों में अध्ययन करने वाले भिक्षुओं की निम्नलिखित श्रेणियाँ थीं–(1) श्रमनेर (निम्नतम श्रेणी) (2) दहर (लघु भिक्षु) (3) स्थाविर (4) उपाध्याय और (5) बह्यश्रुत (श्रेष्ठतम श्रेणी)।18 ह्वेनसांग के विवरण से ऐसा प्रतीत होता है कि विद्यार्थी बौद्ध संघ तक ही सीमित नहीं थे अपितु दूसरे धर्मों के विद्यार्थी भी प्रविष्ट कर लिये जाते थे, जो एक कठोर मौखिक परीक्षा उत्तीर्ण करने में सफल होते थे।19

विश्वविद्यालय का रख–रखाव एवं चलाने के लिए कोई 200 गांव विश्वविद्यालय के नाम किये गये थे। इन दो सौ ग्रामों का राजस्व विश्वविद्यालय को प्राप्त होता था20 जिसमें पैसा, अनाज एवं अन्य सामग्री होती थी। देशी–विदेशी राजाओं और धनाढ्यों द्वारा विश्वविद्यालय को अनुदान भी मिलता था। परिणामस्वरूप विश्वविद्यालय के पास विपुल सम्पति थी। साथ ही साथ विश्वविद्यालय को विभिन्न लेख का द्वारा लिखी गई पांडुलिपियों की प्रतिलिपियों को तैयार करने से भी अच्छी आय हो जाती थी। इसके एवज में कई बार तो हीरे–जवाहरात भी प्राप्त होते थे। मठ की वस्तुओं पर उनके दानकर्ताओं के चिन्ह बने होते थे। छात्रों को सात्विक एवं पौष्टिक भोजन मिलता था। विद्यार्थियों का भोजन इस प्रकार था–प्रातः चावल का पानी, दोपहर में चावल, मक्खन, दूध, फल, घी और मीठे तरबूज इत्यादि एवं शाम में हल्का भोजन। समय को देखने के लिए जल घड़ियाँ रखी होती थी। प्रत्येक घण्टा पूरा होने पर ढोल एवं शंख बजाए जाते थे। विहार का कार्यकाल आठ घण्टे का होता था। प्रातः और अपराह्न में दो–दो घण्टे और मध्याह्न में चार घंटे काम करना पड़ता था। इस प्रकार विद्यार्थियों की दिनचर्या सुबह चार बजे से प्रारंभ हो जाती थी। नालन्दा विश्वविद्यालय निगमित संस्था के रूप में कार्य करता था। इसकी प्रतिष्ठा एवं आर्थिक संरचना इतनी सुदृढ़ थी कि इसके स्वयं के सिक्के चलते थे और स्वयं का टकसाल भी था।21

इस विश्वविद्यालय का वातावरण धर्मनिष्ठा, श्रद्धा एवं विद्वत्तापूर्ण था। भिक्षु गुरूजन एवं छात्र दोनों अपनी शिक्षा एवं कार्यों से निष्ठापूर्वक जुड़े हुए थे। दस या नौ छात्रों के दल पर एक शिक्षक ध्यान दिया करते थे और प्रत्येक की जिज्ञासा शांत कर उनकी कर्मियों को दूर करने में व्यक्तिगत रूचि लेते थे विश्वविद्यालय के भिक्षु गुरूजन प्रकाण्ड विद्वान होकर छात्रों के लिए अत्यन्त लाभदायी थे। यहाँ के शिक्षकों की महत्ता के बारे में एक चीनी तीर्थयात्री तीशेंग न लिखा है कि–''मैं अत्यन्त खुशनसीब हूँ कि नालंदा के ज्ञानी गुरूजी ने व्यक्तिगत रूप से मुझे उपदेश देकर मेरी क्षुधा को तृप्त किया, इतना सब मुझे अन्यत्र संभव ही नहीं था। इस विश्वविद्यालय का अंतिम लक्ष्य नैतिक आचरण

का परिपालन करते हुए अर्थोपार्जन के साथ सामाजिक, पारिवारिक, स्वाभिमानयुक्त जीवन बिताते हुए अंत में मोक्ष प्राप्ति था।22

नालंदा विश्वविद्यालय की 9वीं से 12वीं सदी तक अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त थी। कन्नौज के हर्षवर्द्धन के समय में इसकी सर्वाधिक उन्नति हुई थी लेकिन 1203ई0 में इस विश्वविद्यालय को खूंखार तुर्क बख्तियार खिलजी के हैवानियत का शिकार होना पड़ा जिसने सम्पूर्ण विश्वविद्यालय एवं पुस्तकालय भारत का अमूल्य खजाना (दस्तावेज, पुस्तकें, पांडुलिपि) समाप्त हो गया।

आधुनिक विद्वानों में फ्रांसिस बुकानन पहला विदेशी था जिसने नालंदा के इन खण्डहरों का पता लगाया। इतिहासकार तारानाथ ने लिखा है कि राजगृह का महत्व घट जाने के बाद भी नालंदा का महत्व बना हुआ था। तिब्बती यात्री धर्मस्वामी नालंदा के अंतिम दिनों का साक्षी था। उसी के समय नालंदा पर आक्रमण हुआ था। उस समय राहुल श्रीभद्र अंतिम आचार्य थे जिनकी उम्र नब्बे साल थी। आक्रमण के समय राहुल श्रीभद्र की जान धर्म स्वामी ने बचाई थी।24

13वीं सदी तक भारत के इस विश्वविख्यात प्राचीनतम शिक्षा केन्द्र अवसान हो चुका था जो आज भी नालंदा के खण्डहर रूप में अपनी गरिमा लिए विद्यमान है। आजभी इस खण्डहर को देखने से इसकी भव्यता, ख्याति एवं उपलब्धियां मालूम पड़ने लगती है कि अपने उत्थान के समय में कितना यह वैभवशाली एवं खुशनुमा रहा होगा।

आज पुनः प्राचीन नालंदा विश्वविद्यालय की गौरव एवं गरिमा को लौटाने के लिए बिहार सरकार ने भारत सरकार के सहयोग से इसे पुनर्जीवित करने का कार्य प्रारंभ कर दी है जिसमें विदेशों खासकर चीन, जापान, सिंगापुर व दक्षिण कोरिया से काफी सहयोग मिल रही है इसका नया नामकरण करते हुए, नालंदा अन्तर्राष्ट्रीय विश्वविद्यालय नाम रखा गया है। इस विश्वविद्यालय को बिहार के मुख्यमंत्री श्री नीतीश कुमार के विशेष पहल पर भारत के पूर्व राष्ट्रपति डॉ0 ए0पी0जे0 अब्दुल कलाम ने नया आयाम दिया तथा प्रख्यात नोबेल पुरस्कार प्राप्त अर्थशास्त्री प्रो0 अगर्त्यसेन ने इसकी प्रगति के लिए दिशा–निर्देश देते रहे हैं। इस नये विश्वविद्यालय की प्रथम कुलपतित (डेजिग्नेट) डॉ0 गोपा सभरवाल, रीडर, समाजशास्त्र विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय तथा विशेष कार्य पदाधिकारी (ओ0एस0डी0) डॉ0 अंजना शर्मा, एसोसिएट प्रोफेसर, अंग्रेजी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय बनायी गयी है।25 बिहार के मुख्यमंत्री श्री नीतीश कुमार की सरकार ने राजगीर के छबीलापुर में विश्वविद्यालय भवन निर्माण के लिए 446 एकड़ भूमि की व्यवस्था कर दी है जिसमें भवन निर्माण कार्य चल रहा है। कुलपति ने भरोसा दिलाया है कि वर्ष 2012–13 से विश्वविद्यालय के शैक्षणिक सत्र एवं अन्य तमाम गतिविधियाँ प्रारंभ कर दी जायेंगी। प्रारंभ में यहा बौद्ध अध्ययन, दर्शनशास्त्र, तुलनात्मक धर्मशास्त्र, इतिहास, अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध और शांति तथा अर्थशास्त्र सहित सात विषयों की बढ़ाई होनी है।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि जो नालंदा विश्वविद्यालय प्राचीन काल में अपनी उपलब्धियों, गौरव व गरिमा के लिए विश्वविख्यात था, जहाँ ज्ञान प्राप्त करने के लिए देश ही नहीं विदेशों से छात्र आते थे, उस उपलब्धि एवं महत्ता को प्राप्त करने में यह नया नालंदा अंतर्राष्ट्रीय विश्वविद्यालय कहाँ तक सफल हो पा रहा है। यदि यह पुराने गौरव व गरिमा के साथ एक बार फिर

उठ खड़ा हुआ तो यह सिर्फ बिहार ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण भारत क लिए गौरव की बात होगी। जिससे भारत का मान–सम्मान दुनिया में पुनः एक बार शिक्षा के क्षेत्र में उच्च शिखर पर होगा।

संदर्भ सूचीः–

1. नालंदा में अब आगे की कहानी, दैनिक जागरण, पटना, अभ्युदय (विशेषांक), पेज 53
2. नालंदा खण्डहर, हिन्दुस्तान, पटना उत्कर्ष (विशेषांक), पेज 35
3. अतीत की दासतां सुना रहा खण्डहर, अशोक प्रियदर्शी, जे0वी0जी0 संध्या प्रहरी, पटना, 12 सितम्बर, 1993, पेज 8
4. देश–दुनिया को दिया शिक्षा का दान, प्रभात खबर, पटना (विशेषांक), तीसरा खण्ड, 25 मार्च, 2011, पेज 5
5. वाह नालंदा, आह नालंदा निराला, तहलका, (बिहार संस्करण), पटना, वर्ष 2, अंक 19, 15 अक्टूबर, 2011, पेज 22
6. एक नए बोधिवृक्ष का उदय, फरजंद अहमद, वरिष्ठ पत्रकार, हिन्दुस्तान, पटना, 13 जुलाई, 2011, पेज 8
7. नीरज कुमार पाण्डेय, परमिता, जनवरी–मार्च, 2009, पेज 32, प्रधान सं0 डॉ0 शशांक शुक्ला, वाराणसी
8. अतीत की दास्ता सुना रहा खण्डहर, अशोक प्रियदर्शी, जे0वी0जी0, संध्या प्रहरी, पटना, 12, सितम्बर, 1993, पेज 8
9. यूनिक गाइड, सामान्य अध्ययन प्रा0 भारतीय इतिहास खण्ड, पेज सी/53
10. बिहार में बौद्ध शिक्षण केन्द्र : नालंदा महाविहार विश्वविद्यालय, डॉ0 सुनीता कुमारी, परिशीलन, जुलाई–सितम्बर, 2011, पेज–297, वाराणसी
11. बिहार : एक अवलोकन, सम्पादक विजय कुमार राय, विवास पॅनोरमा सीरीज, पॅनोरमा, प्रकाशन, दिल्ली, पेज 85
12. वही, पेज 15
13. बिहार में बौद्ध शिक्षण केन्द्र–नालंदा महाविहार विश्वविद्यालय, डॉ0 कुमारी, परिशीलन, जुलाई–सितम्बर, 2011, पेज 297–298
14. नीरज कुमार पाण्डेय, परमिता, जनवरी–मार्च 2009, पेज 32, प्रा0 सम्पादक डॉ0 शशांक शुक्ला वाराणसी
15. अतीत की दास्ता सुना रहा खण्डहर, अशोक प्रियदर्शी, जे0वी0जी0 संध्या प्रहरी, पटना, 12 सितम्बर, 1993, पेज 8
16. वही
17. वही
18. बिहार में बौद्ध शिक्षण केन्द्र–नालंदा महाविहार विश्वविद्यालय, डॉ0 सुनीता कुमारी, परिशीलन, जुलाई–सितम्बर, 2011, पेज 298–299
19. अद्भुत भारत, ए0एल0 बाशम, हिन्दी रूपान्तर अनुवादक, वेंकटेशचन्द्र पाण्डेय, प्रकाशक, शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी, आगरा, 1997, पेज 136

20. प्राचीन भारत का इतिहास, संपादक द्विजेन्द्र नारायण झा एवं कृष्ण मोहन श्रीमाली, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, संस्करण 1996, पेज 321
21. बिहार में बौद्ध शिक्षण केन्द्र–नालंदा महाविहार विश्वविद्यालय, डॉ0 सुनीता कुमारी, परिशीलन, जुलाई–सितम्बर, 2011, पेज 301
22. नीरज कुमार पाण्डेय, परमिता, जनवरी–मार्च 2009, पेज 32, प्रा0 सम्पादक डॉ0 शशांक शुक्ला वाराणसी
23. अतीत की दास्ता सुना रहा खण्डहर, अशोक प्रियदर्शी, जे0वी0जी0 संध्या प्रहरी, पटना, 12 सितम्बर, 1993, पेज 8
24. भारत के बौद्ध विहार, चतुर्भुज, प्रकाशन विभाग, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, पेज 46
25. विवाद शरण गच्छामि, विकास कुमार सिंह, द पब्लिक एजेंडा, 15 अक्टूबर 2011, वर्ष 4, अंक 17, पेज 32–33

सहायक समाचार पत्र एवं पत्रिकाएँ

1. हिन्दुस्तान, पटना, बिहार यात्रा–2, 9 मार्च, 2010, पेज 26
2. दैनिक जागरण, पटना, 18 मार्च 2010, पेज 19
3. राष्ट्रीय सहारा, पटना, 22 मार्च, 2010, पेज 16
4. दैनिक जागरण, पटना, 23 मार्च 2010, पेज 17
5. दैनिक जागरण, पटना, 10 मार्च 2011, पेज 13
6. हिन्दुस्तान, पटना, 25 मार्च 2011, पेज 14
7. बुद्ध संकेत, प्र0सं0 संगम जी विद्रोही, डॉ0 अम्बेडकर साहित्य एवं कला केन्द्र, वाराणसी, अंक 4, अक्टूबर–दिसम्बर, 2011

एक प्रतिबद्ध जनकवि : नागार्जुन

डॉ0 संजय कुमार सिंह
असिस्टेंट प्रोफेसर
हिन्दी विभाग
भूपेश गुप्त महाविद्यालय, भभुआ
कैमूर, बिहार

हिन्दी साहित्य में नागार्जुन, मैथिल में यात्री, लेखकों, मित्रों और राजनीतिक कार्यकर्ताओं में 'नागाबाबा' संस्कृत में चाणक्य जैसे सम्मानसूचक संज्ञा से अभिहित किए जाने वाले इस साहित्यकार का वास्तविक नाम वैद्यनाथ मिश्र है। नागार्जुन की प्रारम्भिक शिक्षा प्राचीन पद्धति से संस्कृत में हुई। उन्होंने आगे चलकर कोलंबों में पालि भाषा और बौद्ध दर्शन का विशेष अध्ययन किया। उन्होंने स्वयं अपना नाम 1936 में बौद्ध धर्म की दीक्षा प्राप्त कर नागार्जुन रख लिया।

कबीर, महाप्राण. निराला और मुक्तिबोध के बाद हिन्दी साहित्य में अगर कोई क्रांतिकारी कवि हुआ है तो वह नागार्जुन ही है। स्वतंत्रता के बाद भ्रष्टाचार में डुबे भारतीय राजनेताओं और उनके चमचों के प्रति मानवीय मूल्यों की निरन्तर बढ़ती हुई ह्रासोन्मुखी प्रवृत्तियों के प्रति, अन्याय एवं अत्याचार के प्रति मजदूरों, किसानों यानी निम्न मध्यम वर्गीय गरीब जनता के शोषण के प्रति आक्रोश नागार्जुन की कविता में दिखायी देता है। वे यथार्थपरक दृष्टिकोण को बड़े व्यंग्यात्मक लहजे में उसकी अभिव्यक्ति कर देते है। लोक जीवन की जितनी गहरी संप शक्ति नागार्जुन की रचनाओं में मिलती है किसी अन्य कवि में नहीं। लोकगीतों को संस्पर्श देकर बोलचाल की भाषा को काव्यभाषा का गरिमा प्रदान करना नागार्जुन की विशेषता है। साधारण जन, निरक्षर लोग और दुख से त्रस्त जनता की आवाज बनकर आज भी नागार्जुन हमें ललकारते हैं। वह लोगों के स्वर में स्वर मिलाते कहते हैं–

जनता मुझसे पूछ रही है क्या बतलाऊँ
जनकवि हूँ मैं, साफ कहूँगा, क्यों हकलाऊ।

नागार्जुन जी स्वयं अभावग्रस्त, अर्थ पीड़ित व उच्च वर्ग द्वारा शोषित थे। अतः अनका आकर्षण उच्च वर्ग से शोषित, किसान, मजदूर, श्रमिक की ओर अनायास ही बढ़ता गया। उनको जो आघात लगा था, उसकी पीड़ा मजदूरों में देख रहे थे। स्वाधीनता प्राप्ति के बाद असमानता की खाई निरन्तर बढ़ रही थी। एक तरफ मध्यम वर्गीय समाज गरीबी की ओर बढ़ रहा था, दूसरी ओर जो धनी थे वे लखपति से अरबपति होते जा रहे थे। मनुष्य और मनुष्यता, भाषा और साहित्य और राष्ट्रीयता की नई नई परिभाषाएं तय की जा रही थी। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भी देश की स्थिति में सुधार न होने पर तथा गरीबी, दरिद्रता, भूखमरी, महामारी, महंगाई, बेकारी, भ्रष्टाचार, अकाल और बाढ़ के प्रकोप से पीड़ित आम जनता की दुर्दशा पर आक्रोश करते हैं–

देश हमारा भूखा–नंगा, घायल है बेकारी से
मिले न रोटी रोजी, भटके दर–दर बने भिखारी से

आजादी के बाद राजनेताओं के कार्यकलापों पर आक्रोश व्यक्त करते हुए लिखा–

खादी ने मल–मल से सांठ कर डाली है।
बिडला, टाटा, डालमिया की तीसों दिन दिवाली है।

अब्राहम लिंकन के प्रजातंत्र की परिभाषा से उपजे आक्रोश को शोषितों और पीड़ितों के पक्षधर नागार्जुन ने अपनी कविता 'प्रजातंत्र का होम' में इस प्रकार अभिव्यक्त किया है–

सामंतों ने कर दिया प्रजातंत्र का होम
लाश बेचने लग गये खादी पहने डोम
खादी पहने डोम लग गये लाश बेचने
माइक गरजे, लगे जादुई ताश बेचने
इन्द्रजाल की छतरी ओढ़े श्री मन्तों ने
प्रजातंत्र का होम कर दिया सामन्तों ने।

नागार्जुन की कविता 'अकाल और उसके बाद' अर्थगांभीर्य में अकाल पीड़ित गरीब जनता की सारी संवेदनाओं का सही प्रतिबिम्ब प्रस्तुत करती है। हमारे धरती के सपूत उत्पादक और निर्माता होते हुए भी भूखे व दरिद्र रह जाते हैं। अनाज के भण्डार जमाखोर रख लेते हैं और आम जनता भूखों मरती है। इसका एक बहुत दर्दनाक चित्र कविता नागार्जुन ने 'अकाल और उसके बाद' कविता में प्रस्तुत किया है–

कई दिनों तक चूल्हा रोया, चक्की रही उदास
कई दिनों तक कानी कुतिय सोई उनके पास
कई दिनों तक लगी मीत पर छिपकलियों की गश्त
कई दिनों तक चूल्हों की भी हालत रही शिकस्त।

नागार्जुन ने पूंजीवाद का जमकर विरोध किया। हिन्दी कविता में सर्वहारा वर्ग के संघर्ष की आवाज बुलन्द करने वालों में नागार्जुन अग्रणी है। नागार्जुन समाज तथा देश के प्रति कर्तव्यनिष्ठ एवं जागरूक कवि है। देश की असहाय अवस्था से उनका हृदय पीड़ित हो उठा। उनकी कविता में जनता का संघर्ष मूर्तिमान है।

आओ रानी, हम ढोयेंगे पालकी
यही हुई है राय जवाहर लाल की
रफू करेंगें फटे–पुराने जाल की
यही हुई है राय जवाहर लाल की
बेबस–बेसुध, सूखे टुकड़े
हम ठहरे तिनकों के टुकड़े
टहनी हो तुम भारी डाल की
खोज खबर तो लो खास महाल की।

नागार्जुन यायावरी प्रकृति के थे ऐसा कुछ स्वभाववश भी था और कुछ आजीविका की मजबूरी भी। नागार्जुन लोक चेतना के कवि है। यह लोक उनमें काफी सहज स्वाभाविक रूप से हर जगह विद्यमान है। नागार्जुन की भाषा सीधी, बेबाक, बेलाग बिल्कुल ठेठ भाषा है।

नागार्जुन को जनता की शक्ति पर भरोसा है। उनमें परिवर्तन और विद्रोह जनवादी विचारधारा के अतिरिक्त सामाजिक, राजनैतिक विसंगतियों के प्रति गहन व्यंग्यात्मकता का अद्‌भुत सामंजस्य है। नागार्जुन में आक्रोश, क्षोभ, अक्खड़ता, तीक्ष्णता, क्रांति की पुकार, देश की रक्षा की उत्कृष्ट उमंग, शोषित और उपेक्षितों के प्रति सहानुभूति सब कुछ तो है ही, प्रकृति के नैसर्गिक छवियों और व्यक्तिगत रागात्मक अनुभूतियों का चित्रण भी है। नागार्जुन ऐसे कवि हैं जो अभावों में ही जन्मे थे, पीड़ित वर्ग के कष्टों को इन्होंने स्वयं झेला है। निसंदेह ऐसा ही व्यक्ति भारत की निम्न वर्गीय जनता का सच्चा सांस्कृतिक प्रतिनिधित्व कर सकता है।

संदर्भ–

1. नागार्जुन : चुनी हुई रचनाएँ, संपादक– शोभनाथ मिश्र, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 1985
2. लहर, नागार्जुन विशेषांक
3. युगधारा, नागार्जुन
4. नागार्जुन : एक अध्ययन– डॉ0 जगन्नाथ पंडित
5. नागार्जुन और उनका रचना संसार– विजय बहादुर सिंह
6. प्रगतिशील साहित्य की समस्याएँ– शिवदास सिंह चौहान
7. स्मृति शेष– प्रभात खबर (पटना), 30 जून, 2011, पृष्ठ 09

सरकारी विकास योजनाओं का ग्रामीण समाज पर प्रभाव

वन्दना मौर्या
एम.ए.,नेट समाजशास्त्र

ग्रामीण समाज के अध्ययन से पता चलता है कि सरकारी विकास योजनाओं से उत्पादन में वृद्धि के साथ–साथ व्यावसायिक तथा परमपरागत फसलों में भी वृद्धि हुई विकास योजनाओं के कारण उन्हे पहले से बेहतर आवास खान–पान सुख, समृद्धि के साधन प्राप्त हुये। स्वास्थ कार्यक्रम के द्वारा विमारियों पर काबू, स्वच्छता कार्य क्षमता में वृद्धि इत्यादि में कफी हद तक सफलता पाई गयी। लोगो का स्वास्थ पहले से बेहतर हो गया है। विकास योजनाओं से लोगो का पलायन रूका मजदूर आज अपने सेवा शर्तो पर कार्य करते है। इस प्रकार हम देखे तो विकास योजनाओं का सकारात्मक प्रभाव के बावजूद जो नाकारात्मक प्रभाव सामने आया है वह प्रशासनिक कठिनायियों योजना के सम्बन्ध में जानकारी एवं योजनाओं के पूर्ण राशि न मिलने से सम्बन्धित है। स्वतन्त्रता के समय से ही भारत एक कल्याणकारी राष्ट्र रहा है। और उसका प्रमुख्य उद्देश्य अपने लाखों लोगो का कल्याण करना है। स्वतन्त्रता से पूर्व हम देखें तो ग्रामीण विकास सम्बन्धित प्रयोग किये जा रहे थे वे काफी हद तक गाँधी जी के दर्शन से प्रभावित थे और रहे है अर्थात् गाँवों के स्वशासी स्वयं में पूर्ण प्रशासित आर्थिक एवं समाजिक इकाई के रूप में विकसित करना था। सिन्धु घाटी सभ्यता काल से ही भारत में गाँव प्रशासनिक आर्थिक और समाजिक व्यवस्था के अंग रहे है। कुछ अंचलो को छोडकर भारत के शेष भागों में गाँव का लगभग एक सा स्वरूप रहा है। अतः वर्तमान रूप की उन्नति प्रगति और विकास स्वयं के परिप्रेक्ष्य थे। उस युग का मुल्यांकन या विश्लेषण करना उचित नही है। हर युग की अपनी विशेषताएँ समस्याये और सीमाये है। परन्तु निःसंकोच कहा जा सकता है कि ग्रामीण विकास की अवधारणा प्राचीन है तथा भारत में प्राचीन गाँव आत्मनिर्भर थे। अंग्रेजी शासन काल में गाँव की प्रशासन व्यवस्था, गाँव परिषद, पंचायत, गाँव वालों के हाथ से निकलकर सीधे कर्मचारियों के हाथें में आ गयी । अंग्रेजी शासन काल में प्रशासन व्यवस्था जमींदारी और ठेकेदारी पर टिकी थी। कई अंग्रेजी प्रशासक ने निजी स्तर पर अपने ढ़ग से भारत में सुधार किये। ए0ओ0ह्यूम, लार्ड इरविन, रिपन, डफरिन आदि ने अपने ढंग से विकास प्रक्रिया में योगदान दिया।

ग्राम्यसुधार के लिए और विशिष्ट प्रयोग किये गये अंगेजी शासन की कोई निश्चित निति न होते हुए भी स्थानीय तौर पर अंग्रेज शासन की कोई निश्चित निति न होते हुए हुए भी स्थानीय तौर पर अंग्रेज प्रशासनिक अधिकारीजन भावना से प्रेरित थे भारतीय ग्रामीण विकास की दशा सुधारने के लिए छिट पुट प्रयास करते रहे। ग्राम विकास के लिए अनेकानेक कार्यक्रम समय पर चलाये गये। 1927 में जी0एफ0एल0 क्रेन ने गुणगाँव में ग्राम सुधार का कार्यक्रम आरम्भ करवाया। महात्मा गाँधी ने 1939 में सेवाग्राम प्रयोग किया जो वर्धाग्राम उत्थान कार्यक्रम के नाम से प्रचलित था रविन्द्रनाथ टैगोर ने 1921 में श्री निकेतन संस्थान स्थापित किया जिसके माध्यम से ग्राम्य उत्थान का प्रयोग किया। 1948–49 में महोबा इटाँवा जिले के 64 गाँव में अग्रगामी विकास परियोजना आरम्भ की गयी। इस

तरह से अंग्रेज सरकार द्वारा ग्राम सुधार का नियोजित कार्यक्रम तो नही बना परन्तु कुछ मुख्य मदों के लिए एक प्रशासनिक ढाँचा धीरे–धीरे अवश्य खड़ा हो गया। जिसके अन्तर्गत कृषि, पशुपालन, जनस्वास्थ्य, शिक्षा, सिंचाई, सड़क आदि को रखा गया, स्वतन्त्रता के पश्चात विकास के लिए मुख्य बाल कृषि, उद्योग, शिक्षा, स्वास्थ्य तथा ग्रामीण विकास से सम्बन्धित क्षेत्रों पर दिया गया। लेकिन बाद में महसूस किया गया कि त्वरित विकास तभी हो सकता है, जब सरकारी प्रयासों से निचले स्तर तक के लोगो की प्रत्यक्ष व परोक्ष भगीदारी हो इसके पश्चात् 2 अक्टूबर 1952 को सामुदायिक विकास कार्यक्रम का शुभारम्भ किया गया जो ग्रामीण विकास के इतिहास में मील का पत्थर साबित हुआ जो बाद में राष्ट्रीय प्रसार के रूप में बदल गया।

बहुत सारे पत्र–पत्रिकाओं और पुस्तकों की समीक्षा से हमें ज्ञात होता है कि स्वतन्त्रता से पूर्ण जो ग्रामीण विकास सम्बन्धित प्रयोग किये जा रहे थे वे काफी हद तक गाँधी जी के दर्शन से प्रभावित थे अर्थात– गाँवों को स्वशासी स्वयं में पूर्ण प्रशासित आर्थिक एवं सामाजिक इकाई के रूप में विकसित करना था। अंगेजों के आने से पूर्व तक गाँव के 80% परिवार कृषि पर निर्भर थे शेष 20% परिवार अपने पैतृक धन्धों जैसे– लुहार, कुम्हार, बढ़ई नाई मोची, धोबी इत्यादि में लगें थे। गाँव के कृषक परिवार उन्हे वार्षिक या फसलवार अनाज, कपड़ा इत्यादि देते थे।भारत में प्राचीन युग में गाँव आत्मनिर्भर थे। सामान्यतः स्वयं शासित एवं खुशहाल थे। अंगेजों के शासनकाल में शासन व्यवस्था जमींदारी और ठेकेदारी, महालवाणी, रैयतवाणी आदि पर टीकी थी। जमींदारी और ताल्लुकेदारी धीरे–धीरे इतनी सुदृढ़ हो गयी कि जनसाधारण इसे प्रशासन का अंग मानने लगे। लेकिन देश आजाद होने के पश्चात् सर्वप्रथम 2 अक्टूबर 1952 को सामुदायिक विकास कार्यक्रम चलाया गया। यह चतुर्दिक विकास की एक ऐसी पद्धति है जिसमें जन–सहभाग के द्वारा समुदाय के जीवन स्तर को ऊँचा उठाने का प्रयत्न किया जाता है। भारत में शताब्दियों से लम्बी राजनीतिक पराधीनता ने यहाँ के ग्रामीण जीवन को पूर्णतया जर्जरित कर दिया था। इसके पश्चात् ग्रामीण विकास के लिए सरकार द्वारा बहुत सारी योजनाएँ चलायी गयी।

उनमें से कुछ इस प्रकार है :–

1. मनरेगा
2. इन्दिरा आवास योजना (1985–86)
3. प्रधानमंत्री जन–धन योजना (28 अगस्त 2014)
4. मेक इन इण्डिया (25 सितम्बर 2014)
5. स्वच्छ भारत अभियान (2 अक्टूबर 2014)
6. सांसद आर्दश ग्राम योजना (11 अक्टूबर 2014)
7. मिशन इंद्रधनुष अभियान (25 दिसम्बर 2014)
8. पहल योजना (1 जनवरी 2015)
9. ह्रदय योजना (21 जनवरी 2015)
10. बेटी बचाओं बेटी पढाओं (22 जनवरी 2015)
11. प्रधानमंत्री जीवन ज्योति योजना (9 मई 2015)

12. प्रधानमंत्री आवास योजना (25 जून 2015)
13. प्रधानमंत्री कृषि सिंचाई योजना (1 जमलाई 2015)
14. प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना (16 जूलाई 2015)
15. स्टैण्ड अप इण्डिया (5 अप्रैल 2016)
16. प्रधानमंत्री उज्जवला योजना (1 मई 2016)

इस शोध पत्र में तथ्यों का संकलन सैद्वान्तिक अध्ययन पत्र–पत्रिकाओं, समाचार पत्रों एवं पुस्तकों तथ्था जानकारी रखने वाले व्यक्तियों एवं पूर्व में किये गये शोधों के माध्यम से किया गया है।

अतः निष्कर्ष में यह कहा जा सकता है कि सरकार द्वारा चलायी गयी योजना का जो ग्रामीण समाज के विकास के लिए चलाये गये है उसका बहुत प्रभाव पड़ा। जिसमें सकारात्मक तथा नकारात्मक दोनो प्रकार के प्रभाव दिखायी देते है। कृषि से सम्बन्धि जो योजनाएँ चलायी गयी उससे अकाल, सूखा जैसी समस्या से छुटकारा मिलने मे मदद मिली। जिससे उत्पादन बढ़ा, उपभोग बढ़ा लोगो का आर्थिक जीवन प्रभावित हुआ मनरेगा के कारण हम देखते है कि जागरूकता बढ़ी है जिससे वे अपनी सेवा शर्तो पर कार्य कर रहे है। इन्दिरा आवास योजना के द्वारा आवास की समस्या दूर हुई है उज्वला योजना के द्वारा महिलाओं को धूआरहित चूल्हों की सुविधा मिली जिससे उनकी स्वास्थ्य में सुधार हुआ और समय की बचत हुयी कौशल विकास योजना के द्वारा बहुत सारे बेरोजगार युवक को रोजगार प्राप्त हुआ बेटी बचाओं बेटी पढ़ाओं के द्वारा महिला साक्षरता दर में कुछ % की वृद्धि हुई है। स्वस्थ तथा परिवार कल्याण के सम्बन्ध में जो कार्यक्रम चलाये गये है उससे बहुत लाभ प्राप्त हुआ है लोगो की स्वास्थ्य में सुधार हुआ है और जनसंख्या वृद्धि में कमी आयी है। परन्तु इस विकास योजनाओं का नकारात्मक प्रभाव भी देखने को मिला है। इस योजना के लिए जो रूपये सरकार द्वारा आते है वह खर्च तो हो जाता है परन्तु लाभ उचित मात्रा में नही मिल पाती है। ग्रामीण समाज में लोग अभी इतने शिक्षित नही है इसलिए इन विकास योजनाओं का ग्रामीण लोगो को सही ज्ञान नही होता जिससे वे लोग इसका लाभ नही ले पाते और जो भी कर्मचारी इस योजना को उन्हे बताता है वह भी इसमें अपना हिस्सा लेते है।

सन्दर्भ–

1. Desaai, A.R., (1994), Rural Socialogy in india : Popular Prakashan, Bombay
2. प्रो0 राजेन्द्र प्रसाद (1914) ग्रामीण विकास की रूप रेखा : रावत पब्लिकेशन, जयपुर नई दिल्ली
3. शर्मा, ओमप्रकाश, (1995), ग्रामीण समाज में नियोजित सममाजिक परिवर्तन : रावत पब्लिकेशन, नई दिल्ली
4. प्रसाद, आवद (2000) गाँवों में सामाजिक आर्थिक एवं राजनौतिक परिर्वतन : रावत पब्लिकेशन, जयपुर नई दिल्ली
5. Wikipedia
6- Chrome web browser

AUTONOMY IN EDUCATION: A MATTER OF QUALITY ASSURANCE

Dr. Surendra Pal
Associate Professor
Department of Teacher Education
D.A.V. (P.G.) College
Muzaffarnagar, U.P.

Abstract

The word autonomy according to Swiss philosopher Jean Piaget comes from within and results from a 'free decision'. It is intrinsic value and the morality of autonomy is not only accepted but obligatory. The term autonomous can be used to explain the idea that rules are self-chosen. By choosing which rule to follow or not, we are in turn determining our own behavior. From human resource perspective autonomy can be defined as level of discretion granted to an individual in his or her own work while the institutional autonomy is heaving the capacities as a legislator to be to implant and purse official goals. Autonomous institutions are free for finding sufficient resources or modifying their plans, policies, programmes, courses, responsibilities and services accordingly. In education also, the autonomy up to some extent is necessary to impart quality education. The present paper dealt with the autonomy in education with greater emphasis on teacher autonomy.

Key Words: Education, Profession, Teacher, Institution, Autonomy

INTRODUCTION:

In education, the concept of autonomy is perhaps most commonly discussed in reference to professional independence in schools, particularly the degree to which teachers can make autonomous decisions about what they teach to students and how they teach it. The concept of autonomy in public education may take several different forms:

- **Local-governance Autonomy:** In education, the degree to which local governing bodies—such as school districts and school boards—can make independent decisions about how to structure and operate public schools is a common topic of study, discussion, and debate. Those who advocate for greater autonomy in the governance of schools tend to argue that the individuals and institutions closest to, most knowledgeable about, and most invested in a school and in the welfare and success of its educators, students, and communities are best suited to making important decisions related to operations, academics, leadership, teaching, and improvement.

This general philosophy of governance is often contrasted with state or federal educational policies that are intended to influence the structure, operation, or academic programs in districts and public schools, given that autonomy in local governance is directly related to the level of prescription articulated in state and federal education laws, regulations, and related compliance rules and requirements. Autonomy in local governance also intersects with two related educational terms and concepts: "local control" and "site-based management," both of which refer to the ability of local institutions and governing bodies to make autonomous decisions about the management of public schools. In some states and regions, local control is a complicated and often contentious issue. In England, for example, there is a long history of local control over public schools, typically in the form of school boards or school unions, while state-directed control of public schools is less controversial or contentious in the southern states, which do not have the same history of local control over public schools.

- **School Autonomy:** The concept of autonomy also intersects with the governance and design of specific schools. For example, charter schools—privately operated schools funded partially or entirely by public money, often in the form of student tuition paid by states and communities—are generally considered to have more autonomy when it comes to making decisions about how the school will operate and teach students. Charter-school regulations, however, can differ significantly from state to state: some states have more prescriptive or involved regulations governing the operation of charter schools, while others have more permissive policies, lighter governmental oversight, and less demanding compliance requirements. As with issues related to local governance, the autonomy of individual public schools is directly related to the level of prescription articulated in state and federal education policies, regulations, and related compliance rules and requirements.
- **Teacher Autonomy:** The concept of "Teacher Autonomy" is a common topic of discussion and debate in education. Advocates of greater teacher autonomy may argue that because teachers are in the best position to make informed decisions about a student's education, teachers should be given as much autonomy as possible when it comes to determining instructional strategies, curriculum, and academic support. In this view, for example, more regulations, tougher job requirements, greater administrative oversight, or more burdensome teacher-evaluation procedures will inevitability stifle the instructional creativity and responsiveness of teachers, which could produce a variety of negative results, including lower student performance or higher job dissatisfaction and attrition rates among teachers. Critics of teacher

autonomy tend to cite evidence that teaching quality and effectiveness is uneven, and that problems such as achievement gaps or low graduation rates indicate that measures need to be taken to improve the effectiveness of teachers and public-school instruction, including more administrative oversight, increased educational and professional requirements for new teachers, stronger evaluation systems for job performance, or penalties for poor-performing teachers.

- **Parent autonomy:** In recent years, the idea of parents playing a role in the operation and management of a school has become increasingly popular and contentious. While some debates are centered on the degree of control that parents should have over what gets taught to their children—particularly when it comes to subjects that are broadly contentious in American society, such as sex education or the teaching of evolution—others are focused on issues related to leadership and management. For example, so-called "parent trigger laws" allow parents to intervene when the school their children attend is deemed "low performing." Although laws differ from state to state, they usually allow parent groups to create petitions that, with enough signatures, can "trigger" a variety of actions, such as converting a public school into a charter school, firing and replacing the school's administration and faculty, or closing the school and sending its students to alternate schools. In some states, laws allow committees or councils of parents to play a role in the management of schools, which can even extend to participating in decisions related to the hiring and firing of school administrators. In many cases, however, parent committees play only an advisory role in a school or district, and their recommendations may or may not be acted upon.
- **Student Autonomy:** In recent years, educators have increasingly discussed and debated the degree to which students should be given more autonomy in the educational process. For example, the concept of "student voice" is often used in reference to instructional approaches and techniques that take into consideration student choices, interests, passions, and ambitions. Some educators argue that students should play a more active role in designing or selecting learning experiences in schools, and that such approaches can encourage students to be more interested in school, more motivated to learn, and more likely to take greater responsibility over their education. In addition, the terms *student autonomy* or *learner autonomy* may refer to various theories of education that suggest learning improves when students take more control or responsibility over their own learning process.

TEACHER AUTONOMY

The concept of teacher autonomy refers to the professional independence of teachers in schools, especially the degree to which they can make autonomous decisions about what they teach to students and how they teach it.

In recent years, teacher autonomy has become a major point of discussion and debate in education, largely as a result of educational policies that, some argue, limit the professionalism, authority, responsiveness, creativity, or effectiveness of teachers.

While teacher autonomy is most frequently discussed in terms of what teachers teach to students and how they teach it, the issue may also manifest in other ways. For example, some schools are entirely led and managed by teachers—i.e., the schools do not have formal administrators; teachers assume administrative roles, usually on a revolving basis. In addition, the composition and negotiation of teacher contracts may also vary significantly from place to place. For example, local teachers unions will negotiate annual contracts with school districts in some states, while most states have statewide teacher contracts that are negotiated by state teachers unions. Depending on its provisions, teaching contracts can directly affect professional autonomy, given that contracts may, for example, determine the specific number of hours that teachers can work each week or limit the roles that teachers can play in a school or district.

Debate Related to Teacher Autonomy

While debates related to teacher autonomy vary from place to place, the professionalism of teachers is typically a central issue in the debates. Many educators, and groups such as teachers unions or membership-based professional organizations for teachers, may argue that infringing on teacher autonomy in the classroom undermines the professional status and expertise of teachers. In this view, attempts to micromanage teaching strategies or teacher performance through more prescriptive policies, greater administrative oversight, or strict curriculum requirements will undermine job satisfaction or the perception that teachers are skilled professionals who have earned a degree of public trust in their abilities.

Advocates of greater teacher autonomy may also argue that because teachers are in the best position to make informed decisions about a student's education, they should be given as much autonomy as possible when it comes to choosing instructional strategies, designing lessons, and providing academic support. In this view, more stringent regulations, tougher job requirements, greater administrative oversight, or more burdensome teacher-evaluation procedures, for example, will inevitability stifle the instructional creativity and responsiveness of teachers, which could produce a variety of negative results, including lower student performance or higher job dissatisfaction and attrition rates among teachers. Given that no policy that is applied to all teachers can take into account the myriad abilities and needs of students, the reasoning goes, important

decisions about educating students should be left to teachers. Similarly, local school leaders and administrators are better positioned to determine the performance of teachers, rather than blanket policies that are applied to all teachers in a district or state, such as valued-added measures—i.e., formulas used to estimate or quantify how much of a positive (or negative) effect individual teachers have on student learning during the course of a given school year.

Critics of teacher autonomy tend to cite evidence that teaching quality is uneven, and that problems such as achievement gaps or low graduation rates indicate that measures need to be taken to improve the effectiveness of teachers and public-school instruction. While the proposed solutions to ineffective teaching are numerous, proposals may include greater administrative oversight, increased educational and professional requirements for new teachers, prepackaged or "scripted" curriculum materials, more demanding evaluation systems for job performance, or penalties for poor-performing teachers, for example.

The following examples will help to illustrate a few of the primary issues giving rise to debates about teacher autonomy:

- **Testing policies:** High-stakes tests—exams used to make important decisions about schools, educators, or students—are widely considered to cause a phenomenon known as "teaching to the test"—i.e., educators focusing their instruction on the topics that are most likely to be tested, or spending classroom time prepping students for tests rather than teaching them knowledge and skills that may be more important. If penalties are imposed on schools, educators, students, or teachers due to test results, critics argue, teachers will inevitably have less autonomy over the instructional process because they will be forced to "teach to the test." As the use of standardized tests has grown in recent decades, educators have increasingly expressed concern about the consequences of such policies, including the consideration of student test scores in the job-performance evaluations of teachers—a highly controversial subject among educators and teachers unions.
- **Standards policies:** Few of the country have developed and adopted learning standards—concise, written descriptions of what students are expected to know and be able to do at a specific stage of their education—that establish learning goals for students in kindergarten through high school. Consequently, when schools "align" their academic programs and curriculum with the learning goals described in standards, some argue that teachers will have less "autonomy" in determining the knowledge, skills, and content they teach to students. The extent to which learning standards limit the autonomy of teachers remains a subject of ongoing discussion and debate, but many educators argue that standards do not impose significant limitations on the professional autonomy of teachers. For example, some argue that standards

only describe broad learning expectations, and that they do not tell teachers *how* to teach or even, to a great extent, *what* to teach. For example, a standard that requires students to demonstrate understanding how "checks and balances" and "separation of powers" work in American government does not require teachers to teach those ideas in any specific way—they can use any number of instructional approaches, learning materials, or historical examples to teach students the concepts described in the standards.

- **Curriculum policies:** In the country like United States some states, districts, and schools have policies related to curriculum that may affect teacher autonomy to a greater or lesser extent. For example, some districts and schools require teachers to use "scripted curriculum"—i.e., a prescriptive, standardized, prepackaged form of curriculum that may require teachers to follow a particular sequence of prepackaged lessons and, in some cases, read aloud from a teaching script in class. Though the term is now considered pejorative and rarely used, forms of scripted curriculum were called "teacher-proof curriculum" in past decades. Clearly, the professional autonomy of individual teachers will be significantly limited when such a curriculum system is mandated. In other districts or schools, teachers may be required to use certain texts or instructional approaches, or follow "pacing guides" that outline a specific sequence of lessons and content. For example, teachers may be required to have students reading a designated chapter in a particular textbook on a certain day of the school year. Depending on the level of prescription, and whether they are voluntary guidelines or mandates, curriculum policies can directly affect the instructional autonomy of teachers.
- **Promotion policies:** Some states, districts, and schools have policies related to grade promotion or graduation that may limit the ability of teachers to play a role in the process of deciding how and when students will be promoted. For example, a district policy may require that students be automatically held back if they fail a course, which could, in some circumstances, supersede a teacher's recommendation that the student be promoted due to certain extenuating factors. Some states may also require students to pass a standardized test before they are promoted to the next grade level or eligible to receive a high school diploma (for a related discussion, see high-stakes test. Other policies may require a particular course of corrective action when students fail a course, which could also have implications for teacher autonomy. For example, students who fail a course may be required to complete a credit-recovery program such as an online course or summer-school program that may not mirror the content taught in the course the student failed. In this case, the teacher may not have a say in how their students "recover" the credit they failed to earn in the teacher's class.

- **Evaluation policies:** Discussions and debates about "teacher evaluation" and "teacher accountability" have grown more prominent and contentious in recent years. Depending on the systems, methods, and criteria used in the job-performance evaluations of teachers, evaluation policies may affect teacher autonomy. If evaluation processes, expectations, and requirements are more stringent or burdensome, it could influence the way that teachers instruct students. For example, if standardized test scores are used in the evaluation process, and if compensation decisions (salaries, bonuses, or "merit-based" pay) are connected to test scores, teachers will be more likely to modify how and what they teach to improve student test results.

Thus, Autonomy refers to thinking for oneself in uncertain and complex situations in which judgment is more important than routine. The concept of teacher autonomy refers to the professional independence of teachers in schools, especially the degree to which they can make autonomous decisions about what they teach to students and how they teach it.

Autonomy is equated with freedom to act in accordance with one's personal beliefs and, most dangerously, in one's own interest. Freedom of will and self-interest are potentially entangled in a dangerous fantasy of sovereignty according to which perfect liberty is incompatible with the existence of others.

Autonomy is important because it encourages thinking which recognizes uncertainty and complexity in both defining and exploring the concept and context of autonomy.

Teacher Autonomy in professional development is both a right and a responsibility of the individual teacher. This can be furthered by the collaborative development of capacity within school communities working together to support professional development through joint planning and execution of professional development activities and events. It is the responsibility of the school division to provide mechanisms and resources to ensure both individual teachers and groups of teachers have equitable access to professional development.

Ways to Develop Teacher Autonomy:

Apart from the recognition of how important autonomous behaviours may be in our lives and our teaching, and of the empowerment and satisfaction that derive from their development and exercise, we all need ability and willingness to implement changes in our behaviour in order to become more autonomous.

Six important elements in implementing change are as follows:

1) Self-Awareness: Self-awareness leads us to a better understanding of ourselves as learners and professionals, of our strengths and weaknesses. Self-evaluation and reflection are excellent tools in getting to know ourselves and a diary is of great value to record the process.

2) Awareness: Awareness of what happens around us, to our students, at the work place, in our community, in our country and in the world. Through awareness we are better able to identify our students' needs, goals, capabilities, desires, changes and dreams, so we can help them develop autonomy and their own awareness of their learning processes. Besides, we can make better contributions to the achievement of standards and to a better positioning of our institution.

3) Responsibility: Responsibility, a quality without which autonomy is not possible, gives us freedom and empowerment; at the same time it demands dedication, organization, time management skills, investment, stamina, perseverance and commitment to tasks and projects.

4) Challenges: Challenges take us a step forward and show us the scope of our capabilities. They lead us to professional growth. Challenges may take the form of exploration into new areas, of decisions to improve notoriously an area of our knowledge or skills or to undertake research, etc.

5) Participation and Collaboration: These are also key elements to the development of autonomy. In our profession, more than in some others, growing together, constructing collectively and undertaking projects, innovations and enterprises is of paramount importance. Autonomy does not mean isolation, individualism or self-sufficiency. Negotiation, cooperation, sharing, promoting, listening and respecting others and their views are essential components of participation and collaboration.

6) Radical Changes: Changing roles means transforming our role in the classroom, in the degree that our convictions allow it (radical changes or moderate ones), from controller to advisor, from instructor to guide, from transmitter to observer and listener, from evaluator and judge to researcher.. Transforming our role in the classroom is concomitant with the transformation of our students' roles.

Professional Development as a Means for Teacher Autonomy:

In the context of teacher autonomy, professional development has been described as teachers' participation in an array of activities that include action research, teachers' study groups, academic conferences, and formal education programs as a means of improving their professional competence, knowledge of their communities, the enhancement and exercise of their autonomy, and the transformation of their educational realities.

Professional development as a means for teacher autonomy has revealed the positive effects that action research and study groups, among other alternatives of development, may have on teachers' knowledge, attitudes, and actions depending on the content and process of these types of endeavors. Professional development for teacher autonomy has different implications for teachers, administrators, legislators, and

educational researchers. Professional development should relate to teachers' interests and needs, which depict the areas that may require more attention in the school and the new teaching, curricular, or administrative challenges that teachers need to address in their professional development experiences.

CONCLUSIONS:

Ever since the 21st century, autonomy in education has aroused world-wide concern. It has been deeply realized by those who have insight that without autonomy in education up to some extent, the qualitative improvement in the sector of education are mere theory or become mere formalities. Therefore the autonomy in education at each level is of pressing urgency for future perspective. Furthermore as the teachers have the major responsibility of enhancing the education quality their autonomy is of major concern. By doing this he will be more motivated, innovative and professional in his duties.

References:

1. Agarwal, J.C.(2008), 'Modern Indian education' Shipri Publication, Delhi.
2. Bhatnagar, R.P. (2009), 'Educational Technology and Management' International Publishing House, Meerut.
3. Chandra, S.S. (2008), 'Principles of Education' Atlantic Publishers & Distributors, New Delhi.
4. Prasad, Jahardan (2007), 'Advanced Educational technology' Kanishka Publishers and Distributors, New Delhi.
5. Sharma, R.A. (2009), 'Essentials of Educational Technology' R. Lall Book Depot, Meerut.
6. Vernon, P.E.(1956), 'The Measurement of Abilities' University of London Press, London.
7. https://en.wikipedia.org/wiki/Autonomy

****

'Deconstruction' the best way to understand

Dr. Md Muntazir Alam
Patna University, Patna

Abstract

The present article is an attempt to probe into the recent theory of 'Deconstruction' by Jacques Derrida. Moreover, how it is helpful in the understanding of any text. Perusal and understanding of a text has been a matter of great concern among the critics from the very beginning and has led to literary theories.

Key words: Deconstruction, Traces, Arche writing phonocentricism logocentricism.

Among the theories, propounded recently the theory of deconstruction by Jacques Derrida is the most influential. It is a text/language oriented theory; it appeared in the late 1960's and caused many previous philosophers to be re-assessed was born in1930 in the suburbs of the Algiers in the petty bourgeois Jewish family. His Jewishness sense of belonging to a marginal, dispossessed culture and the rabbinic tradition had formative influences on his theory and he boycotted the concept of anything being central and this the soul of the theory.

'Deconstruction' means decent-ring, demarking the problematic nature of all the centres. Derrida rejects the basic concept of the completely western philosophy that there is a centre an origin a truth and ideal form fixed point, an immovable mover, and essence a god presence that guarantees all meanings freezing the marginal. He consider a text made up of different traces, symbols and understanding the text means understanding the text means understanding symbols.

He finds deconstruction the best method to understand any text. Deconstruction is subversive mode of reading, and the whole construction of deconstruction is raise on four pillars.

(a) Concept of binary opposition by Fried rich Nietzsche (1844-1900)

(b) Martin Heidegger's concept of Destruction.

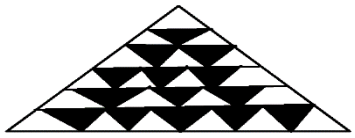
(c) Linguistic theory of Ferdinand-Saussure.

(d) Frauds concept of conscious, subconscious and unconscious.

In the whole theory, Derrida asserts that life is a dance of thoughts waltzing between extremes such as beautiful ugly, life-death male female. It is a free play of opposites and we are the prisoners of our own perspectives. We perceive and understand things according to our thoughts and experiences that are the different

traces imprinted in our mind. So there is nothing privileged and nothing marginal. All are like the configuration in which each triangle out of the preceding configuration. There is no central configuration freezing the free play of the others.

Seeing the figure, we can say that one figure is dissolving into the other or the next one is coming out of the prior one. However, there is an underlying structure.



Therefore, it is impossible to draw a clear – cut line between reality and representation and he examines Rousseau's 'Confessions'. Rousseau says, "Writing is a dangerous supplement", an addition to the natural resources of speech. Rousseau in his 'Confession' marginalizes 'Writing' and gives more importance to speech. Derrida points out, Rousseau debunks writing, while a supplement is one that adds and makes the original more complete; that is the original 'Speech' lacks something that is an always haunted by a sense of 'absence' which is fulfilled by the written from-

Similarly, Derrida mint 'examines Saussure's ideas on language. Saussure says: 'Language' and writing' are two distinct systems of sign; the second exists for the sole purposes of representing the first. The linguistics object is not both written and spoken forms of word; the spoken form alone constitutes the object. However, the spoken word has so intimately connected to the written image that the latter manages to usurp the main role. People attach more importance to the sign itself (course in general linguistics: 1916 pp. 23-24).

Derrida shows how Saussure fails to grasp full significance of his own theories. Saussure, like Aristotle, Plato and Rousseau, marginalizes 'writing' and privileges 'speech' Derrida calls written from 'a signifier of the signifier'.

Privileging speech over writing has called phonocentricism, but to Derrida it is logocentrcism because there is an absolute truth i.e. transcendental logo prescribed by inner conscience heard by "inner voice" and then uttered in the form of sound and these sounds have given the written symbol. So he says written from in 'a signifier.

Derrida uses writing in its narrow sense as well as in its broader sense to indicate all systems that show traces (like impressions, footprints where the object is absent). So to Derrida, there is an Arche-writing before any kind of writing, a text and understanding a text is understanding the text preceding it which itself takes birth from some text. A text become a trace, 'a signifier' as well as a signified'. In the way, there is never any present-only traces of the traces like the configuration of the triangles- once comes out of the other and dissolving into the other.

Thus, understanding a literary text is to scrutinise the traces and to reach very close to the 'Originary' because there is nothing absolute. All the concepts have relatively understood but while reading a text use must be very careful if we are not blinded by the visible. Moreover, this is possible when we adopt the subversive mode of reading.

When a text is presented before us, we must find out the binary opposites because all the different concepts are juxtaposed in opposition in which one is privileged over the but in this subversive mode of reading we have to turn the upside down. The superior has made inferior making the inferior superior. The revered hierarchy is again deconstructed and in this way, one can penetrate into the structure of any discourse and can make a critical study of any text.

Thus, Derrida dismantled many established concepts in every field such as philosophy, Anthropology and psychology. He puts every concept under erasure because he believed that there is nothing absolute and fixed. We defer from one meaning to another. We keep moving to another. We keep moving fromone signifier to another signifier; we never get to the signified, the signified gets lost in the search and we keep going round and round.

Thus, elements or entities are never present because language is a state of dissemination. Dissemination is the state of perpetually unfulfilled meaning. Therefore, Derrida has no use for differences inscribed finally in a closed system or a static structure. He coins the team difference to express not only difference but also the endless deferment (postponement).

Thus, this method of reading may lead us to better under – standing but it is a methodology based on suspicion and scepticism and fits in the general mood of question.

One of the major problems associated with this method is that it gives the readers a wide scope to operate but does not fix any real responsibilities on them.

As it assumes that there can be no truth takes the reader to in determinant meaning "Half there – half not there".

References:

1. Confession – Rousseau
2. Course in general linguistics 1916 pp 23-24
3. Of grammatology 1967 Jacques Derrida

Water Scarcity in Metropolitan Cities in India

Ram Kripal
Lecturer in Sociology
Kripa Ram Janta Inter College
Sarurpur Khurd, Meerut, UP, India.
Email: ramkripal.meerut@gmail.com

Abstract

Water scarcity can mean scarcity in availability due to physical shortage, or scarcity in access due to the failure of institutions to ensure a regular supply or due to a lack of adequate infrastructure. Water scarcity already affects every continent. Water use has been growing globally at more than twice the rate of population increases in the last century, and an increasing number of regions are reaching the limit at which water services can be sustainably delivered, especially in arid regions.

Here the study emphasis on Indian metropolitan cities particularly Chennai, Delhi, Bangalore, Bhopal, Nagpur, Agra. In those cities water scarcity has reached it at alarming state.

Introduction

India is now facing the water crisis in its history, and 21 metro cities ran out of groundwater by 2020, a new report from the NITI Aayog – a government think tank highlighting the need for "urgent and improved" management of water resources.

With nearly 600 million Indians facing high-to-extreme water stress – where more than 40 percent of the annually available surface water is used every year – and about 200,000 people dying every year due to inadequate access to safe water, the situation is likely to worsen as the demand for water will exceed the supply by 2050.

While Indian cities are grappling for water supply and have need to take immediate action as growing scarcity will also hit India's food security.

States have to establish measures to manage their groundwater and their agriculture water, CWMI report, India's first comprehensive collection of nationwide water data.

CWMI is a step in the right direction, but NITI Aayog could have taken it a step ahead by comparing state water management practices against leading countries, according to experts. Attention could have been paid to the states' performance in implementing existing laws against groundwater exploitation.

21 Indian cities – including Delhi, Bengaluru, Chennai and Hyderabad – will run out of groundwater by 2020, affecting 100 million people; 40 percent of India's population will have no access to drinking water by 2030.Currently, many Indian states, including Andhra Pradesh, Chhattisgarh and Tamil Nadu, face water scarcity due to changing rainfall patterns.

The Economic Survey 2017-18 described India's water crisis and explained the triggers, including rapid groundwater depletion, the decline in average rainfall and increasing dry monsoon days.

The level of groundwater in India decreased at 10-25 mm/ year between 2002 and 2016. Average rainfall declined, from 1,050 mm in the summer cropping season of 1970 to less than 1,000 mm in summer cropping season in 2015. Likewise, in the winter cropping season, average rainfall declined, from approximately 150 mm in 1970 to about 100 mm in 2015. Dry days without rainfall during the monsoons have increased, from approximately 40 % to 45 % in 2015.

If mitigation measures are not implemented, then India will face a 6 % loss in its gross domestic product (GDP) by 2050. With nearly 70 percent of water contaminated India ranks 120th of 122 countries in a global water quality index. India occupied nearly 4 % of global freshwater and 16 % of global population. Water-intensive agriculture and raising water demand for industrial, energy production and domestic use of water are significantly stressing India's limited water resource. Conceived as an annual exercise by the NITI Aayog, the index e valuates states on nine broad sectors and 28 indicators, including groundwater, irrigation, farm practices and drinking water.

As we know water is a state subject, the decision-making about the resource lies with states. This index is an attempt to budge states and UTs towards efficient and optimal utilization of water and recycling thereof with a sense of urgency," Amitabh Kant, chief executive officer of NITI Aayog. In 2015-16, 14 of the 24 states analyzed scored below 50 percent on water management techniques and have been classified as low performers. These states are concentrated across the populous agricultural belts of north and east India and the north-eastern and Himalayan states. Gujarat performed best with a score of 76 percent, followed by Madhya Pradesh 69 percent and Andhra Pradesh 68 percent. Seven states scored between 50-65 percent including Karnataka, Maharashtra, Punjab, Tamil Nadu, Telangana, Himachal Pradesh and Tripura and have been classified as medium performers. Water Index scores can vary widely across states, but most states has score below 50 % and could significantly improve their water resource management practices.

Water Management Scores By State		
State	Score	Performance
Gujrarat	76	High
Madhy Pardesh	69	High
Andhra Pradesh	68	High
Karnatka	56	Mdeium
Maharashtra	55	Mdeium
Punjab	53	Mdeium
Tamilnadu	51	Mdeium
Telngana	50	Mdeium
Chhatisgrah	49	Low
Rajsthan	48	Low
Goa	44	Low
Kerala	42	Low
Odisha	42	Low
Bihar	38	Low

Uttar Pradesh	38	Low
Harayana	38	Low
Jharkhand	35	Low
Tripura	59	Medium
Himanchal Pradesh	53	Medium
Sikkim	49	Low
Assam	31	Low
Nagaland	28	Low
Uttara Khand	26	Low
Meghalaya	26	Low
Source: Composite Water Management Index, NITI Aayog		

The challenge of India's food security measures faces significant risks as low performers such as Uttar Pradesh, Bihar, Rajasthan and Haryana on the water index account for 20-30 % of India's agriculture output and is home to over 600 million people.

Significant improvement of Low-performing States

With many water-scarce states have performed better in the Index. States with high and medium performances Gujarat, Madhya Pradesh, Andhra Pradesh, Karnataka, Maharashtra and Telangana have suffered from severe droughts in recent times.

The average scores have increased 1.8 % points between 2015-16 and 2016-17. Eight states gained 5 % percentage points or more despite the slow-moving nature of several indicators such as irrigation potential utilized and area under rain-fed agriculture. The maximum benefits have been achieved in surface water bodies' restoration, watershed development activities, and rural water supply measurement.

Meghalaya, Sikkim and Tripura are among the top five states which showed most improvement, gaining more than 7.5 percentage points each a sign of increasing water policy actions taken by these states. Similarly, Rajasthan, Jharkhand and Haryana – non-

Himalayan states achieving best improvements – were also among the low performers in the overall performance index.

Better groundwater management mechanism and use of water Sustainability

Most states did well on the infrastructure-heavy themes of major and medium irrigation and watershed development, and have also enacted policies in line with the recommendations on the policy and governance. However, they were lagging on the critical themes of source augmentation groundwater, sustainable on-farm water use practices and rural drinking water.

Groundwater augmentation can significantly improve with the strengthening of groundwater regulations and strict implementation on the ground. Steps has taken for improvement of monitoring network and continuous monitoring of groundwater level and groundwater quality, strict implementation of rainwater harvesting and continuous operation and maintenance of the same will also help states manage their groundwater better.

The 2019 Chennai water crisis should be a wake-up call for Indian cities. Dried up taps, restaurants and hotels lacking of water so they are out of business, police protection for protecting water resources, water being transported by train and tankers are not isolated events taking place in faraway places but are increasingly taking place almost every year in our neighborhoods.

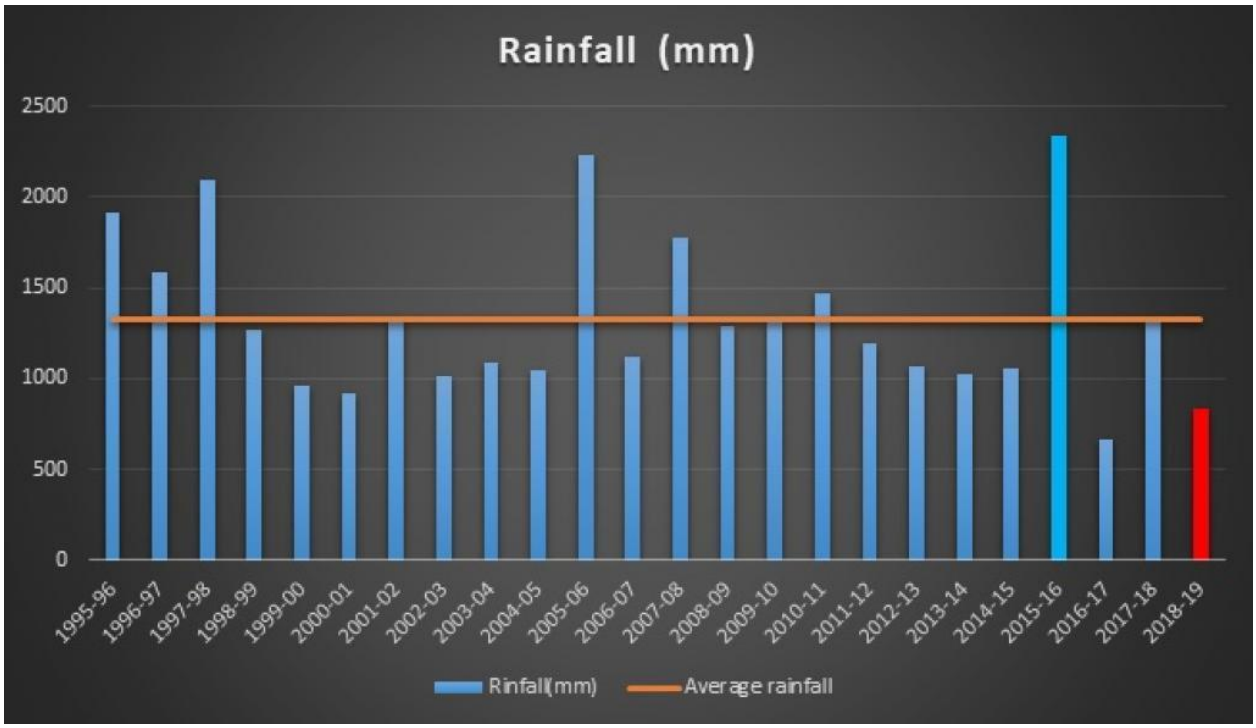
When situations like these strike an affluent and mega city, as it did in 2017-18 in Cape Town, they made headlines, bringing attention to the unfolding urban water crisis globally. Post Cape Town, multiple articles/reports pointed out the impending and existing water crisis for many Indian cities.

This year, it was Chennai that ran out of water.

The Chennai metropolitan area (CMA) consisting of Chennai city, with a population of 4.9 million, and its adjoining areas has an estimated population of 8.6 million and is the fourth-largest urban conglomerate in India.

Chennai was in the news four years ago for an entirely opposite reason but an equally serious situation the unprecedented floods of December, 2015, that drowned the city for many days, devastating lives and impacting businesses.

This year, the reservoirs that overflowed during the 2015-16 floods, dried out. Of Chennai's total requirement of 830 MLD (million liters a day) water, the Chennai Metro Water Supply and Sewage Board (CMWSSB) was able to supply only about 525 MLD during the worst days of the crisis.



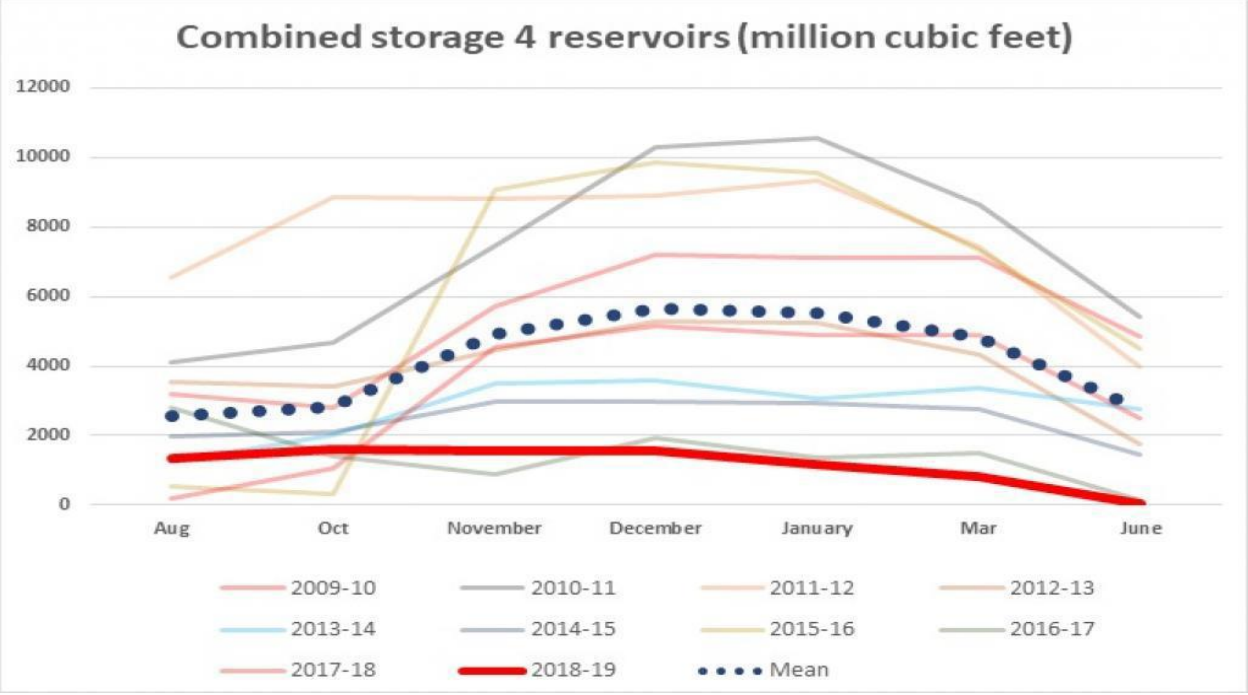
Empty reservoirs

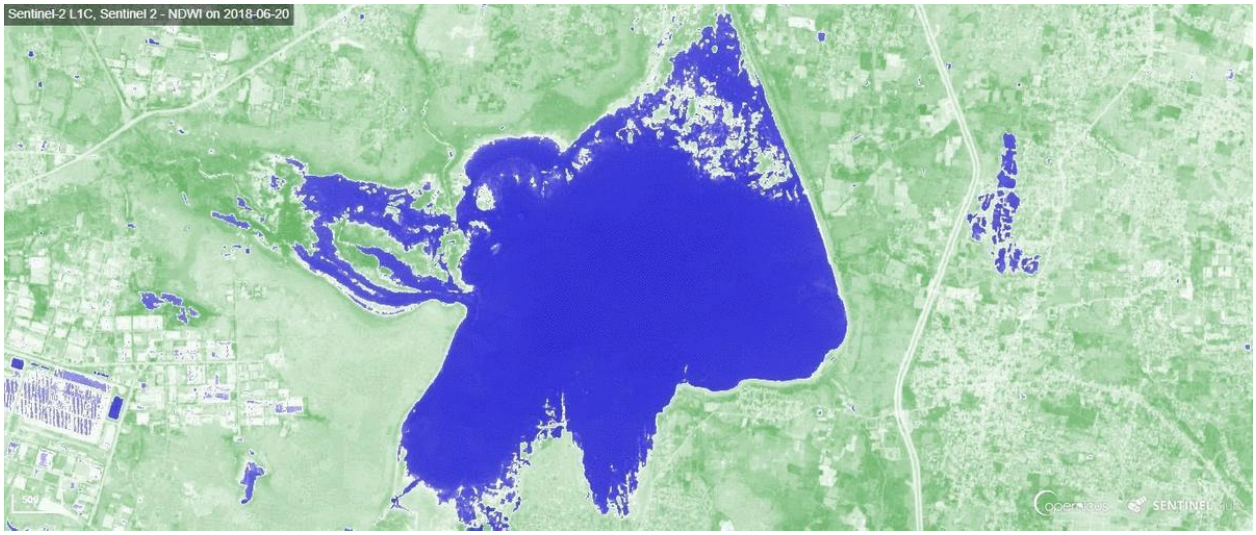
The city of Chennai has four major reservoirs/lakes: Poondi, Cholavaram, Redhills and Chembarambakkam. These supply about 200 MLD of water. They fill up at the end of

the Northeast monsoon (October-November) and supply water till the next monsoon season.

Post the 2015-16 seasons, the monsoon has been in deficit for two out of three years, with last year's monsoon deficit being ~ 40 per cent. Due to a deficit monsoon this year, the reservoirs did not get filled up, bringing their combined storage to almost zero.

On June 30, 2019, the combined storage stood at just 18 million cubic feet (mcft) (0.1 per cent of total storage of 11,257 mcft). Last year, on the same day, the storage was 2,245 mcft. With a couple of months still left to go before rainfall, Chennai is in for a hard time in the coming months.





Chennai's vanishing groundwater

Groundwater is extracted extensively, both within and outside Chennai city limits, to meet the city's water demands. The CMWSSB and private tanker suppliers extract groundwater from rural areas on the outskirts of Chennai and transport it via tankers.

Within city limits, groundwater extraction takes place from about 0.42 million private groundwater wells, with 66 per cent of households having their own private wells. The result is overexploitation, with the city extracting almost twice the annual recharge.

Limited recharge due to the deficit monsoon and long-term indiscriminate groundwater extraction is making water tables fall rapidly, leading to wells drying up, deteriorating water quality and the risk of saline sea water ingress requiring well deepening or the search for wells further away from the city.

Huge water craves for water tanker

Tankers supplying groundwater from outside the city limits are Chennai's lifeline. At the height of the crisis, there were about 700-900 CMSSWB tankers making 9,700 trips, two-three times the usual trips to compensate for loss of supply from reservoirs, supplying

about ~ 100 MLD of water and 4,500-5,000 private tankers, making five-six trips daily, supplying ~ 200 MLD.

However, groundwater overexploitation was made worse by limited recharge this year. It led to conflicts and tensions brewing up in and around the surrounding urban-rural areas, where many people were against indiscriminate groundwater mining in their area, forcing tankers to travel longer distances.

Inadequate planning for water management

After the drought of 2000, Chennai made it mandatory for buildings to have rainwater harvesting systems (RWH) installed. Rainwater harvesting did initially help to increase recharge and improving water tables.

However, there are concerns that over the years, poor implementation and lack of maintenance had led to many of these RWH systems becoming dysfunctional. With the water crisis on its doorstep now, city utilities have started a drive to check the efficiency of rainwater harvesting and install more.

RWH alone can do little when unregulated encroachments, illegal construction and indiscriminate pumping is pushing the city to limits. Due to rapid urbanization and encroachment, the number of water bodies in Chennai have reduced to 28 (2017) from 60 (1893) and area under these water bodies has shrunk from 12.6 sq. km to just 3.2 sq. km, significantly affecting the city's capacity to recharge depleted groundwater.

Chennai currently has two desalination plants supplying 200 MLD. After the current crisis, work on another desalination plant has been initiated that would supply 150 MLD at a cost of 1,259 core by 2021, with a plan to add another of 400 MLD capacity.

Would these heavy investments save the city? Many believe that in a city with more than 1,000 mm rainfall, expensive desalination plants consuming lots of energy with negative environmental externalities might not be the best answer.

The financial sustainability of desalination plants is also in question, with utilities spending Rs- 45-50 per 1,000 liters to produce potable water but charging Rs- 3-5 from consumers.

Conclusion

The 2019 crisis is a wake-up call for Chennai and other cities in India. With cities being the powerhouse of the economy, much more is required to make them sustainable and livable. Integrated urban water management is the need of the hour, with no single effort or intervention being able to achieve long-term resilience. Within city limits, efforts should be put into rejuvenating its existing and lost water bodies, properly installing and managing rainwater harvesting systems and increasing the reuse of treated water. With much of Chennai's sources of water lying outside city limits, efforts need to be put in place to secure reservoir catchments, recharge groundwater and build partnerships with farmers and stakeholders. Otherwise, conflicts over water sources would keep increasing. Time is running out and there is an urgent need to act now on conserving water.

References:

1. UNwater.org
2. Wikipedia.org
3. UN World Water Development Report 2006: 'Water: a shared responsibility'
4. NITI aayog
5. nmcg.nic.in

Traditional Health Care Practices among Tharu Tribe of UP

Dr. Surya Bhan Rawat ,
Associate Professor,
Department of Sociology,
Kisan P.G.College, Bahraich, Uttar pradesh

Priyanka Paswan,
Assistant Professor
Department of Sociology,
R.P. S.P. P.G. College Nimari, Ayodhya,

Abstract

Tharu tribes are situated in Baharaich, Kheri, Unnao, Balarampur and Shrawasti districts of U.P. Other Tharu tribe are found in UttaraKhand and Nepalin the Tarai regions. Plague, Philaria, Mental Fever, Malaria, Typhoid, Blindness, Seasonal diseases: Cholera, Hepatitis,Gaistotise in female person, pregnant female Anaemia absence of many vitamins female and children suffering from many kinds of diseases and other diseases present among them. Mostly Tharu people suffer from these diseases. Due to urbanization and globalization many new diseases such as diabetes, cancer cardio-vascular and mental diseases are rising among them. Thus adequate measures are required to address the chronic health condition of the tribal region. For this the present paper is designed to throw lights on health conditions and measures for preventions of various diseases that are prominent among Tharu tribes.

Key Words: Tribes, Health, Disease, Health-care practices, Region

The endeavour to achieve and maintain an optimum state of health has always exercised the minds of men since ancient times. As a result, a number of healing systems evolved across the globe. People have devised systems to mitigate the worrisome situations arising out of diseases using their own method, which vary from one community to another. Health, or poor health condition, was once only attributed to biological or natural conditions. Socio-biologists have confirmed that the spread of diseases is greatly influenced by the socioeconomic status of individuals, ethnical traditions or beliefs, besides other cultural factors. From the times of yore, people in different parts of world have been trying to explore the causes of aliments and have engaged themselves in discovering remedial measures. Human societies around the world have evolved a well-defined pharmacopoeia and therapeutic procedures, be it religious, secular or logical. Such therapeutic procedures are influenced by traditional knowledge and practices, customs and

habits, charms and invocations, as well as constant process of trial and error backed by years of experience. Tribal concept of disease and treatment, life and death is as varied as their culture. Traditional system of medicine has evolved as a result of time-tested experience of people who have been eagerly monitoring the behavior pattern of animals and plants through the ages. And most of the time, folk medicine is based on remedies found in nature. In tribal communities, magic has also played a great role in the emergence of system of medicine.

Every culture has set attitudes regarding the causation of disease which are rooted in their belief systems i.e., naturalistic, Ayurvedic, biomedical, etc. Constant changes in economy, therapy, technology and insurance influences the way communities view and respond to medical care. The sociology of wellbeing and infirmity takes into account the interface between society and health. At the same time, it also looks at health and illness in context of social institutions such as the family, work, school and religion. Social scientists look at how social life governs morbidity and mortality rates and vice versa. There are apparent differences in patterns of health and illness across societies. Patterns of global change in health care systems make it very important than ever to investigate and understand the sociology of health and illness. Community's health care perceptions have a deep bearing on the choice of medical care. It can slow down the precautionary actions, hinder or obscure medical care. The range of insight which the communities have on illness is significant—it varies from witchcraft to germs and poor immunity. According to Western thought, the body is considered as a complex machine which must be kept ''geared-up'' and sickness is taken to be the breakdown of machine. This differs with Eastern thinking in which health is considered as a state of balance between the physical, social and super-natural environment.

There are numerous theories around the world which not only explain the cause of disease but also community's health care seeking approach. According to Personality system of belief, illness is caused by the intrusion of a human being or a supernatural, possessing special power. If someone happens to disobey a social norm or a religious taboo, he or she may call upon the wrath of a deity which manifest in form of sickness or taken as divine punishment. Similarly, illness in many cultures is seen as penalty for not carrying out rituals linked with the adoration of ancestors. In many cultures, illness is accepted as the result of bad karmic action. Illness arising from personality causes can be treated through ritualistic performance, which is done by special practitioners. In the naturalistic system of belief, health is closely linked with the natural environment. A proper balance needs to be maintained for the same and when the balance gets disturbed, it results in illness. Bio-medicine is based on the ''body-as-machine'' metaphor. This thought formed the basis of western medical practice. The health beliefs around the world

are governed by permutation of these theories, and underlie the use of many conventional medicines and therapeutic practices.

Folk medicine incorporates healing practices and ideas on health care which are confined to a particular group in a culture, and are usually transmitted orally or word of mouth. It may also be known as traditional, alternative, indigenous or complementary medicine. These terms are often comparable however, only indigenous and traditional medicines are well harmonizing with folk medicines, while others can be considered in contemporary context. History of folk medicine can be traced back as early as pre-medieval Egypt in 3000 BC, despite the fact that much of contemporary medicine originated in Greece. The Greek manuscripts were afterward translated to Arabic and then undergone further investigations in the Islamic world. Ayurvedic, Unani, Traditional Chinese Medicine and medical herbalism have inherited a rich legacy from folk medicine. It integrates crude medicinal herbs, syrups, decoctions and infusions and is practiced by a few vendors, Hakims9 and Vaidyas10 in the inaccessible areas. People in a number of developing countries, still relies on folk practitioners, including traditional birth attendants, herbalists and bonesetters who make use of locally available herbs to meet their primary health care requirements. A few folk preparations are of incredibly high therapeutic value.

Traditional medicine has maintained its reputation in a number of Asian countries, such as China, India, Japan and Pakistan. In the last few years, there has also been a growing interest in traditional and alternative systems of medicine in many developed countries. Medicinal herbs are the oldest known health-care products and their value is increasing, though its percentage varies depending on the ethnological, medicinal and historical background of a nation. The history of the relationship between plants and healing medications takes us back to the evolution of medicine itself. Evidences from ancient scriptures-the Atharva Veda11 from India, the Petrie collection from Kahun in Egypt, and the Avesta from Persia demonstrates that early medicines were not only based on religion and supernatural world but also narrates the use of herbal, animal and mineral products. Traditional Chinese Medicine (TCM) had been using many conventional practices and most of the informations on early Chinese medicines have been gleaned from the Yellow Emperor's NeiChing. Artemisinin, a potent anti-malarial drug was derived from Artemisiaannua, a plant used in China for the treatment of Malaria. TCM is linked to Chinese Cosmology as a system of beliefs based on the principles of Yin and Yang. Yin and Yang are connected via a circular harmony, which connotes wellbeing, good weather conditions and luck, while disharmony leads to sickness, catastrophe and bad luck. Chinese medicine tries to restore harmony by making use of acupuncture, herbs and food to recuperate and maintain health. Herbal medicine is a vital part of Traditional Chinese Medicine. Herbs are recommended to the patient by taking into account individual's health

status. It is believed that the herbal formulations normalize the natural balance of the body. These may be in the form of pills, powders, decoctions and raw herbs administered orally or as balms for external use. Kampo, a Japanese system of herbal medicine, has a long history, which precisely makes use of herbs to treat diseases. The distinct aspect of Kampo is in its method of diagnosis, which is done through abdominal palpation. The system is based on the assumption that disease occurs as a result of a cacophony in the flow of Qi (energy).

Health Care Practice among Tharus are still primitive and age old. They are still dependant on traditional healer (*Guruwa)* and non-trained midwife *(dhai or dhatri*). They believe disease occurs due to supernatural power and maladjustment with environment. But spiritual cause of disease is more dominant in the mind of the people. To them evil spirits are responsible for cause of various diseases. They believe if these spirits are not satisfied through worship they inflict diseases to the people without any provocation. According to provocation (medicine men) of the study area there are four major causes of illness viz. (I) anger of god (II) anger of ancestral spirit (III) breach of taboo and (IV) possession of evil spirit.

Tharu tribes follow certain traditional method for treatment of diseases in recent time too. They believe religion, morality, disease and its cure are frequently interlinked. Therefore, they perform various religious activities for treatment of diseases as well as to keep the members of their society and family happy. Among these religious activities they committed various *puja*/sacrifices to satisfy god and goddess. Belief in *mantra* (magic) or amulets is an important traditional way of treatment of diseases in their society. They have deep faith in efficiency of *mantra* or amulets in curing diseases. Therefore, when somebody falls ill they first contact the medicine men. He diagnoses the cause of illness through divination. According to the tribes the traditional mantra and amulets are more useful for treatment of diseases like body ache, disease due to evil eyes, snake bite, dog bite etc.

Another important aspect related to treatment of disease in their society is taboos. People believe violation of taboo invites wrath of super natural power which may inflict diseases and other calamities upon them. Therefore, they are particular in following taboos. But, taboos are mostly related to women, directly or indirectly for example, entry of a menstruating woman into kitchen or prayer hall is a taboo. Her presence and involvement is regarded harmful. Besides, one of the major reasons for substandard health of people is living under condition that substantially increases their general susceptibility to disease. They live under less sanitary condition, have less nutritious diet and take less preventive health action such as routine of physical examination. Regarding infant mortality, women

are very less likely to have prenatal checkups and more likely to have poor diets that result in infants with low birth weights. These things contribute to infant mortality. With the waning of forests with which Tharu culture is closely intertwined, the long oral tradition of indigenous healing became a casualty. The saying in Terai area goes: *"No jungles, no healing".*

Some plants use by Tharu People in different diseases

S. No	Botanical Name	Family Name	Regional Name	Use/ Utilisation
1	Achyranthesaspera	Amaranthaceae	Latzeera/ Lahchichira	Pills made from leaves and gur (jiggery) are given orally twice a day in intermittent fever. Root is tied with the left side of woman hair for easy delivery. Root is tied in waist to cure dysentery.
2	Aeglemormelos	Rutaceae	Bel	Wood is kept burning at the door of delivery room to protect the new born and mother from evil spirits.
3	Allium cepa	Liliaceae	Piyaz	Bulb extra prevents from sunstroke.
4	A. Sativum	Liliaceae	Lahsun	Bulb lets are touched with sty one by one to cure sty of eye.
5	Azadirachtaindica	Meliaceae	Neem	Wood fumigation is used as protective measures against abortion. Three trunk embraced time makes scorpion poison

				ineffective.
6	Bacopamonnieri	Scrophulariceae	Brahmi	A poultice of boiled plant is applied externally on child chest to cure cough.
7	Brassucacampestris	Brassicaceae	Sarson	5 gm seed with Lohbaan is used to fumigate victim suffering from evil eyes.
8	Buteamonosperma	Fabaceae	Palas	Bath of dried flowers soaked in water is taken as preventive measures against sunstroke.
9	Calotropismetel	Asclepiadaceae	SafedMadar/Akahuwa	Two and half leaves are put on forehead of woman for easy delivery.
10	Daturametel	Solanaceae	Dhatoora	Seeds wrapped into cloth made into belt and tied on waist of pregnant women to prevent abortion.
11	Euphorbia antiquorum	Euphorbiaceae	Sehund	Latex is applied over navel to achieve easy delivery
12	Emblicaofficinalis	Euphorbiaceae	Aonwala	A small piece of twig worn into neck to cure toothache.
13	Holopteleaintegrifolia	Ulmaceae	Chilbil	Stem bark is tied on arm to cure hydrocoel.
14	Laranthuslongiflorus	Loranthaceae	Banda	Plant protects children from eyes evil.
15	Launaeaprocumbens	Asteraceae	Bangobhi	Leaf paste is applied over forehead of

				children during fever.
16	Mangiferaindica	Anacardiacea e	Aam	Inflorescence is massaged on hand on as protective measures against scorpion sting and snakebite. The seed powder in given in diarrhea.
17	Mimasapudica	Mimosaceae	Chhui-mui	Root is put upon head of weeping
18	Nyctanthesarabor-tristis	Oleaceae	Harsinghar	Leaf paste is applied on forehead of children in fever.
19	Nymphaeapubescens	Nymphaeacea e	Chota Kamal	Root is tied on waist of pregnant woman to avoid abortion
20	Ocimumcanum	Lamiaceae	Bantulasi	Chopped stem pieces are worm around neck to cure respiratory problems.
21	Ocimum sanctum	Lamiaceae	Tulsi	Leaf past is applied over navel of the mother to protect the baby in womb from evil eyes
22	Ricinuscommunis	Euphorbiacea e	Andi, Rendi	Slightly worm leaf coated with mustered oil is applied externally on chest and stomach to cure pneumonia.
23	Streblusasper	Moraceae	Sihoor	Tender twigs are worn around neck to cure chronic conjunctivitis

				and inflammatory eyes.
24	Syzygiumheyneanum	Myrtaceae	Kat-Jamun, Rai-Jamun, Madanua	Stem bark decoction is used against sunstroke
25	Tamarindusindica	Caesalpiniaceae	Imli	Tender twigs made into ring are worn into left index finger of woman for easy delivery
26	Tinosporacordifolia	Menispermaceae	Gurch, Giloy	Arial root pieces are worn around neck to cure jaundice and snakebite. Helpful in various type of fever like- Dengu, Chikenguniya, malaria, typhoid.
27	Triamthemaportulacastrum	Aizoaceae	Gadapunna	Root is tied in left hand to cure malaria.
28	Xanthium strumarium	Asteraceae	Kuthuru	Leaf is tied at left hand wrist to cure malaria. Seeds are worn around children neck to cure chronic conjunctivitis and inflammation of eye.
29	Ziziphusmauritiana	Rhamnaceae	Ber/ Bair	Leaf is touched 7 times with sty by one to cure sty of eye.

Source: Field visit

. The health concept among Tharu tribe is shaped by their socio-eco- environmental and cultural beliefs. They use several herbs as well as primitive methods of treatement of diseases. Health institution within the community revolves around healer and non-trained midwife. Therefore, when some body falls ill they first contact them to diagnoses causes of illness through divination, subsequently this leads to higher rates of death. Tharu tribes are yet to know the modern health care practices vis-à-vis facility available to them. They still

follow and practice age old health care as their forefathers followed. Belief in superstition, traditional socio-cultural institutions and taboo also are responsible for their hazardous health. Present political culture, impoverished condition and illiteracy further keep them away from modern health facility.

References:

- Subba, T.B and Ghosh, G.C (2003) *The Anthropology of North-East India*, Orient Longman Pvt. Ltd., New Delhi.
- Dhanagare, D.N., (2008) *Theme and Perspective in Indian Sociology,* Rawat Publications, Jaipur & New Delhi.
- oshi. S.L., (1995) *Anthropology of Food & Nutrition*, Rawat Publications, Jaipur & New Delhi.
- Allan G. Johnson, (2000) *The Blackwell Dictionary of Sociology,* Blackwell : New Delhi
- National Academy of Science (1986) *Population Growth and EconomicDevelopmentQuestions,* New Delhi, Kalyani Press.
- Misra, R.P.; (1984) *Development Issues of our time*; New Delhi.
- Hussain. M. (2003); *Human Geography,* Rawat Publications; Jaipur and New Delhi.
- Staff Reporter, (2009); *NRHM work in state*--(The Uttar Pradesh Tribune; Guwahati, Uttar Pradesh Tribune Pvt. Ltd.; vol-71, No.341.p-1 & 3)
- Channa, S.M. 1998, '*Medical Anthropology: Health, Healers and Culture'* (ed.) Cosmo Publications.
- Cocker Hem William C, 1997, Medical Sociology, Prentice Hall.
- Coe, Rodney M. 1978, *Sociology of Medicine*. New York, McGraw Hill.
- Dak T.M. 1997, *Sociology of Health in India*, (ed.) Rawat Publication, Jaipur.

A STUDY ON SUSTAINABLE DEVELOPMENT GOAL 13 AND CLIMATE CHANGE IN INDIA

Shashibala Pandey
Research Scholar
Department of Economics
Deen Dayal Upadhyaya Gorakhpur, University Gorakhpur

Abstract

India continues to undertake and effectively implement a large number of actions relating to energy, environment and climate, in particular, covering renewable energy, energy efficiency, sustainable agriculture, sustainable habitat, water, forestry, Himalayan ecosystem, and knowledge and capacity building. These actions reflect India's commitment to meet (and reconcile) the goals of climate change, sustainable development and energy access. India also expects the international community to be ambitious and fulfil its commitments in accordance with the principles of equity and common but differentiated responsibilities. Climate change is one of the most important global environmental challenges, with implications for food production, water supply, health, energy, etc. Addressing climate change requires a good scientific understanding as well as coordinated action at national and global level. This paper addresses these challenges. Historically, the responsibility for greenhouse gas emissions' increase lies largely with the industrialized world, though the developing countries are likely to be the source of an increasing proportion of future emissions. The projected climate change under various scenarios is likely to have implications on food production, water supply, coastal settlements, forest ecosystems, health, energy security, etc. The adaptive capacity of communities likely to be impacted by climate change is low in developing countries. The efforts made by the UNFCCC and the Kyoto Protocol provisions are clearly inadequate to address the climate change challenge. The most effective way to address climate change is to adopt a sustainable development pathway by shifting to environmentally sustainable technologies and promotion of energy efficiency, renewable energy, forest conservation, reforestation, water conservation, etc. The issue of highest importance to developing countries is reducing the vulnerability of their natural and socio-economic systems to the projected climate change.

Key Words: Climate Change, Environment, Sustainable Development,

INTRODUCTION AND BACKGROUND OF THE STUDY:

Climate change concerns have seen tremendous momentum in the past few decades with increasing international cooperation, improvements in climate science and more practical solutions (both mitigation and adaptation oriented) at multiple scales. From a development perspective, climate change is increasingly being recognized as a risk multiplier that disproportionately burdens the poorest and most vulnerable. As we move towards an increasingly urban planet, this risk will be felt intensely in cities and city regions. Alongside the global response to climate change, there has been a growing involvement of municipal governments and other actors in cities to deal with challenges posed by a changing climate. Urban regions are therefore emerging as critical players in dealing with the impact of climate change. From a global environmental perspective, the current wave of urban-focused growth and development as well as global and regional sustainable development trends offers a unique, large-scale opportunity to leapfrog unsustainable development trajectories and put in place transformative development pathways that focus on implementing low-carbon, local and regional climate resilient development. The Intergovernmental Panel on Climate Change (IPCC), in its Assessment Report 5 (AR5), recognised urban areas (Revi et al., 2014; Seto et al., 2014) as distinct categories for the first time, individually and collectively, outlining a framework that brought together the elements of adaptation and mitigation, and offered climate-centric solutions that could be explored in conjunction with addressing challenges of employment, poverty and inequality. It also underscored the importance of urban areas as a critical locus of climate related impacts as well as solutions, and identified how urban systems could potentially contribute significantly to local and global climate mitigation and adaptation, which local, regional and national climate action plans have often missed.

This commentary explores how Goal 13 of the Sustainable Development Goals (SDGs), which focuses on climate change, can help shape national and regional policy. It situates this discussion within the Indian policy context by assessing current efforts by the Government of India to tackle climate change at various levels. It also begins to identify key challenges and opportunities within the Indian policy framework that can help our cities become more resilient to a changing climate.

PROBLEM OF CLIMATE CHANGE AND THE CONTROVERSY:

The Kyoto reduction, by itself, is inadequate to achieve a stabilization of climate change by 2100. A continual and larger reduction, similar to that stipulated in the Kyoto Protocol for the 2008–2012 period, will be needed in the future in order to begin to

stabilize long-term greenhouse gas emissions. Even if stabilization of greenhouse gases is achieved, global warming will still continue for several decades and sea levels will continue to rise for several centuries. IPCC studies make it abundantly clear, however, that industrialized countries alone cannot achieve this reduction. Even if their emissions were reduced to zero in the near future, the current trends of growing emissions from developing countries alone could force the atmospheric concentration to exceed stabilization levels of 550 ppm. The participation of all countries, including the developing countries such as India, is essential for a successful worldwide effort to arrest the growth of greenhouse gas emissions. What is the best method to justly and equitably distribute the burden of stabilizing climate change among the countries? This issue lies at the heart of much of the ongoing negotiations under the auspices of the UNFCCC. India, the fifth largest emitter of greenhouse gases from fossil fuel in the 1990s, has suggested that the 'right' to pollute the atmosphere be apportioned to all countries on the basis of their population. Using this gauge, China and India, the only countries with populations in excess of a

billion each, could legitimately emit greenhouse gases to a greater extent, than other countries with lesser population, for some decades. But, as their greenhouse gas emissions today are less than this proposed allocation, they could 'sell' some of the 'rights' to the industrialized countries. Countries usually propose burden-sharing formulae that favor their economies, and other countries have suggested schemes based on inherited and future emissions, a country's contribution to temperature change, GDP, and land area and other resource endowments. In the global climate change debate, the issue of largest importance to developing countries is reducing the vulnerability of their natural and socio-economic systems to projected climate change. Their concerns include increasing food security, reducing freshwater scarcity, protecting the livelihoods of forest dwellers, dry land farmers and coastal settlements and reducing health risks. Though there is a visible shift in the global discussions towards adaptation at the Climate Convention-related meetings, the focus continues to be on mitigation of greenhouse gas emissions. Adaptation can complement mitigation as a cost-effective strategy to reduce climate change risks. The impact of climate change is projected to have different effects within and between countries. Developing countries have to carefully evaluate the need for, and the roles of global and national institutions in promoting both mitigation and adaptation programmes. Mitigation and adaptation actions can, if appropriately designed, advance sustainable development and equity both within and across countries and between generations. The pervasiveness of inertia and the possibility of irreversibility in the consequences of the interactions among climate, ecological and socio-economic systems are major reasons why anticipatory adaptation and mitigation actions are beneficial. Thus, the inertia and

uncertainty imply that targets and timetables must be fixed for avoiding dangerous levels of interference in the climate system. A number of opportunities to exercise adaptation and mitigation options may be lost if action is delayed.

ROLE OF CLIMATE CHANGE IN INDIA :

India has, over the past years, directed its development pathway to meet its priorities of employment, economic growth, food, water and energy security, disaster resilience and poverty alleviation. India has also aimed to restore its natural capital and adopt transparent and robust governance along democratic lines. However, emerging challenges of climate change impacts, increasing inequities, and lagging human development indices are well recognised by both the citizens as well as the government. The post 2015 UN Sustainable Development Agenda framework provides an opportunity to renew and integrate efforts in order to meet, to a significant degree, national and global aspirations in a defined time frame.

Climate change is affecting the planet and its life more than ever. Temperatures across the globe in 2017 were 0.90 degrees Celsius warmer than 1951 to 1980 mean, according to NASA. 2016 was the third consecutive year in which temperatures were more than 1 degree Celsius above late nineteenth-century levels.70 Each one degree Celsius of temperature increase in global mean temperature is estimated to reduce average global yields of wheat by 6 per cent, rice by 3.2 per cent, and maize by 7.4 per cent.71 Across all the world's oceans, absolute sea level has risen at an average rate of 0.06 inches per year from 1880 to 2013.72 Having spiked by almost 50 per cent since 1990, global carbon dioxide (CO2) emissions have increased more quickly between 2000 and 2010, than in each of the three previous decades.

Goal 13 aims to integrate climate action into national policies and strategies and promote mechanisms for raising capacity for effective climate change planning and management. The focus on the "urgent action" to "combat climate change and its impacts" requires incorporation of both climate change mitigation and climate change adaptation.

THE SCIENCE OF CLIMATE CHANGE : ROLE FOR INDIAN SCIENCE

Climate change is a fast emerging science involving physical, biological and social sciences. There has been an explosion of literature on climate science and policy. There are three broad categories of scientific assessment as adopted by the IPCC: The science of climate change; climate modelling and projections (Working Group-I). Impacts, vulnerability and adaptation to climate change (Working Group-II). Mitigatio and

policies(Working Group-III). Institutions in the industrialized countries largely dominate research on climate science and policy, particularly climate modelling and projections. Developing countries such as India should take leadership in all the above three types of assessments. The participation of scientific community from developing countries is still limited. For example, the total number of Indian experts participating in the Assessment Report-4 of the IPCC is 5 out of 142 in Working Group-I, 9 out of 178 in Working Group-II and 7 out of 160 in Working Group-III. India has completed four nationally coordinated assessments of climate change projections, impacts and mitigation; the first being the climate change studies supported by the Asian Development Bank, the second being the ALGAS (Asian Least-Cost Greenhouse Gas Abatement Study) supported by the Global Environment Facility (GEF), the third being climate impact assessment study conducted under the Indo-UK collaborative project and the latest being the National Communications supported by the GEF. Interestingly, the Ministry of Environment and Forests coordinated all the collaborative efforts. The National Communications was one of the successful national level coordinated efforts involving 131 teams from research and educational institutions, covering all the three aspects of climate change; climate projections, impacts and adaptation, and mitigation11. The National Communications project has promoted a network of research teams and institutions in India, to address various aspects of climate change. Large developing countries such as India should have long-term Research and Development (R&D) groups working on various aspects of climate change science, particularly the modelling aspects of GHG emissions sce narios, climate projections, climate impacts, integrated assessments, adaptation and mitigation. Some of the critical scientific issues that need to be addressed include the following:

- Many uncertainties continue to limit the ability to detect, attribute and understand the current climate change and to project what future climate changes may be, particularly at the regional level. Further, there is a need to link physical climate-biogeochemical models with models of the human system in order to provide better understanding of possible cause– effect–cause patterns linking human and non-human components of earth systems.
- . Improved understanding of the exposure, sensitivity, adaptability and vulnerability of physical, ecological and social systems to climate change at regional and local level.
- Evaluation of climate mitigation options in the context of development, sustainability and equity at regional, national and global level in different sectors (energy and non-energy)

TARGETS OF SUSTAINABLE DEVELOPMENT GOAL 13 IN INDIA:

- Strengthen resilience and adaptive capacity to climate-related hazards and natural disasters in all countries
- Integrate climate change measures into national policies, strategies and planning
- Improve education, awareness-raising and human and institutional capacity on climate change mitigation, adaptation, impact reduction and early warning
- Implement the commitment undertaken by developed-country parties to the United Nations Framework Convention on Climate Change to a goal of mobilizing jointly $100 billion annually by 2020 from all sources to address the needs of developing countries in the context of meaningful mitigation actions and transparency on implementation and fully operationalize the Green Climate Fund through its capitalization as soon as possible
- Promote mechanisms for raising capacity for effective climate change-related planning and management in least developed countries, and small islands developing States, including focusing on women, youth and local and marginalized communities

SDG 13, on climate change, asks governments to 'take urgent action to combat climate change and its impacts'. The goal recognises that addressing and minimising the risks posed by climate change is integral to the successful implementation of the SDGs. It has been lauded for fore fronting concerns around climate change concerns and the urgency of the risks it poses, especially in the context of the climate-development interface. The goal is wide in scope, with a focus on adaptation and mitigation, mainstreaming climate concerns in development policies and discussing financial mechanisms to meet the targets. However, a closer look at the targets within Goal 13 shows that significant domains have been left out. First, three of the four targets focus on awareness raising and capacity building. While they respond to calls for improving capacity to adapt (Lemos et al., 2007), they do not specify who this capacity building should be targeted at and what mechanisms can be used to carry it out. As research has repeatedly shown, capacity building alone does not necessarily lead to improved adaptation action (Fazey et al., 2010) and such initiatives need to be flexible, iterative, forward-looking and repeated. Moreover, the first target mentions the need to 'strengthen resilience and adaptive capacity…in all countries' (emphasis added). The target masks inter-country and intra-country differences—the goals and challenges of building resilience and adaptive capacity in the global North are significantly different from those in the global South and the climate change narrative over the past decades has changed to reflect these differences. Within countries such as India or China, where trade-offs between the rural and urban, industry and farming, subsidies and market-driven growth are made regularly, decisions

regarding what capacity must be built and for whom are difficult and fraught with financial and ethical implications.

CHALLENGES TO ACHIEVE SUSTAINABLE DEVELOPMENT GOAL 13:

1. **Improving Disaster Resilience**: India is highly vulnerable to climate-induced natural disasters, which affect the vulnerable communities the most. The diverse nature of disasters faced by India requires varied capacity and responses promptly both in the areas of adaptation and mitigation. As far as the policy and capacity building interventions are concerned, the country is moving in the right direction. However, there is a need for huge investment for safeguarding the lives of millions already impacted due to poverty and associated vulnerabilities.
2. **Accessing Green Technologies:** In light of the Agenda 2030 for Sustainable Development and the Paris Agreement on Climate Change, environmentally sound technologies increasingly gain the attention of the global community due to the critical role they can play in the fight against climate change and in achieving the SDGs.
3. **Meeting Energy Needs:** India is taking all the steps to face the challenge of making available the energy needed to fuel its impressive economic growth especially when the country needs to wean itself off the dependency on coal, considering that India's electricity demand is expected to triple by 2030, with coal sources accounting for about 57 per cent of electricity generation.

CONCLUSIONS:

SDG Index Score for Goal 13 ranges between 27 and 71 for States and between 30 and 100 for UTs. Karnataka and Lakshadweep are the top-performing among States and UTs, respectively. Lakshadweep has scored 100, making it an Achiever. Four States and one UT bagged a position in the category of Front Runners (with Index score higher than/equal to 65). However, sixteen States and four UTs fell behind in the Aspirants category (with Index score less than 50).

Fatality due to extreme weather events: The target aims for all States/UTs to be adequately prepared in the event of an extreme weather phenomenon to ensure minimum human casualty. Extreme weather events in 2017-18 claimed 2057 lives in India. In other words, for every 10 million population, 16 Indians lost their lives during this period. 26 States reported loss of human lives owing to extreme weather. 514 people died in Bihar due to extreme weather events. Gujarat recorded the second-highest share of fatalities at 229 lives. Goa fared the best in 2017-18. In terms of the number of lives lost per 10 million

population, Arunachal Pradesh has the highest number of fatalities (362). Extreme weather events – include cyclonic storms, heavy rains, floods, landslides among others. Ranking of States/UTs assesses the preparedness of the States to deal with extreme weather events. As the indicator measures the number of human lives lost for every 1 Crore population, States with a lower population will have higher computed values for this indicator. This is the reason Arunachal Pradesh with a lower number of fatalities than Bihar or Gujarat has a higher number of fatalities per 1 Crore population.

REFERENCES

1. Byravan, S., & Rajan, S.C. (2012). An evaluation of India's national action plan on climate change. Chennai: IFMR - Centre for Development Finance and IIT (Madras).
2. Dubash, N.K. (ed.) (2012). *A handbook of climate change in India: development, politics, and governance.* Oxon and New York: Earthscan.
3. Dubash, N.K., & Jogesh, A. (2014). From margins to mainstream? State climate change planning in India. *Economic & Political Weekly*, *49*(48), 86–95.
4. Dubash, N.K. & Joseph, N.B. (2015). The institutionalisation of climate policy in India: Designing a development-focused, co-benefits based approach. Centre for Policy Research, Climate Initiative Working Paper
5. Shukla, P. R., Sharma, S. K., Ravindranath, N. H., Bhattacharya,S. and Garg, A. (eds), Climate Change and India: Vulnerability Assessment and Adaptation, Universities Press, Hyderabad, 2003
6. India's Initial National Communications to the United Nations Framework Convention on Climate Change, Ministry of Environment and Forests, New Delhi, 2004
7. India's Initial National Communications to the United Nations Framework Convention on Climate Change, Ministry of Environment and Forests, New Delhi, 2004
8. Ravindranath, N. H., Joshi, N. V., Sukumar, R. and Saxena, A., Impact of climate change on forests in India. Curr. Sci., 2005, 90, 354–361
9. National Institution for Transforming Urban India (NITI Aayog). (2016). NITI Aayog's Role. New Delhi : National Institution for Transforming Urban India (NITI Aayog), Government of India. Retrieved on 14 October 2016, fromhttp://niti.gov.in/content/niti-aayogs-role

महिलाओं पर डॉ अम्बेडकर के विचार

डॉ रश्मि नायक
असिस्टेट प्रोफेसर
राजनीति विज्ञान,
सुधाकर महिला पी जी कालेज,वाराणसी

डॉ अम्बेडकर का जन्म ऐसे समय में हुआ जब पुर्नजागरण एंव धर्मसुधार से उत्पन्न सामाजिक चेतना प्रखर हो चुकी थी तथा राजनीतिक आन्दोलनो एंव चिन्तको के द्वारा भारतीय सामाजिक व्यवस्था मे व्यापत अन्धविश्वासो व संर्कीणताओ के विरुद्व आवाज उठायी जा चुकी थी । डॉ अम्बेडकर एक विद्ववान, शिक्षाविद्व, राजनेता, प्रभावशाली वक्ता,सामाजिक न्याय के प्रणेता रहे। वे पितृसत्तातमक समाज में महिलाओं को शोषण व अत्याचार से मुक्ति दिलाकर एक ऐसे समाज की स्थापना करना चाहते थे जो स्वतन्त्रता,समानता व न्याय पर आधारित हो। जिसके लिए डॉ अम्बेडकर जीवन भर प्रयासरत रहें। इसीलिए उन्हें आधुनिक युग का मसीहा कहा जाता है।

वैदिक काल मे महिलाओं की प्रस्थिती आदरणीय औंर सम्मानीय थीं।लेकिन वैदिक काल के बाद उपनिषद,पुराण,स्मृतिकाल में महिलाओं की स्थिति बिगड़ने लगी। मध्यकालीन युग में मुस्लिम संस्कृति के प्रभाव के कारण व अनेक कुरीतियों एंव प्रथाओं के कारण इनकी स्थिति औंर खराब होने लगी।

ब्रिटिश काल में अनेक समाज सुधारकों विद्वानों के प्रयास से इनकी दशा सुधारने के लिए कई कानून पास किए गये जैसे–

1 सती प्रथा उन्नमूलन 1813
2 हिन्दू विधवा विवाह अधिनियम 1856
3 सिविल विवाह अधिनियम 1872
4 विवाहित महिला की सम्पति अधिनियम 1874 आदि।

लेकिन स्त्रियो की स्थिति में को सुधार नहीं हुआ।
अम्बेडकर ने देखा कि अस्पृश्यो की तरह ही समाज में महिलाओ की स्थिति अत्यन्त शोचनीय हैं। जो वैदिक समय में अच्छी रही।जो बाद में धीरे धीरे खराब होती गई।

वे बौंद्व और बाहम्णवादी ग्रन्थों की तुलना करते हैं और तर्क देते है कि आर्य सभ्यता भारतीय इतिहास का एक बर्बर चरण था। जिसे बौद्व धर्म ने चुनौती दी थी। जो हिन्दू धर्म के विरुद्व पहली क्रान्ति थी। अन्ततः हिन्दू धर्म ने अपनी प्रतिक्रान्ति के माध्यम से फिर से पितृसत्तातमक समाज की स्थापना की। जिसमे महिलाओ की स्थिति में कोई सुधार नहीं हुआ। 1

डॉ अम्बेडकर मनुस्मृति में महिलाओ की स्थिति से परिचित थे। उन्होने अपने एक लेख **'नारी और प्रतिक्रान्ति'** में स्त्रियों के लिए मनु के निणर्य को बताया हैं। डॉ अम्बेडकर के अनुसार मनु ने

स्त्रियों को भोग से ज्यादा कुछ नहीं समझा है। मनु ने स्त्रियों के समस्त शैक्षिक, आर्थिक व विवाह सम्बन्धित अधिकारो को छीन लिया। मनु ने विवाह को संस्कार माना इसलिए विवाह विच्छेद की अनुमति स्त्रियों को नहीं थी। पुरुष अपनी पत्नी को बेच भी सकता था। 2

सजातीय विवाह और सहभोज दो ऐसे नियम हुए जिसने जाति प्रथा को जन्म दिया और बाहम्णवाद की यही लक्ष्य था इसी को बनाये रख कर वे अन्याय व शोषण करते रहे। 3

इस प्रकार डॉ अम्बेडकर ने हिन्दू समाज मे स्त्रियों की स्थिति का विश्लेषण किया और उनका मानना था कि वैदिक समय के बाद से महिलाओं की स्थिती खराब होने लगी औंर उन पर विभिन्न प्रकार के प्रतिबन्ध लगाया जाने लगा। पुरुषप्रधान समाज उन पर अन्याय व शोषण करने लगा जिसमें तीन प्रमुख हैं–

1सती प्रथा,

2बाल विवाह

3विधवा पुनर्विवाह पर प्रतिबन्ध। 4

डॉ अम्बेडकर महिलाओं की दयनीय स्थिति को सुधारने के लिए केवल उनके सामाजिक स्थिति को सुधारने के पक्षधर नहीं थे बल्कि वे महिलाओ को राजनीतिक व आर्थिक रुप से भी सशक्त बनाना चाहते थें। वे लैंगिग असमानता अन्याय अत्याचार व शोषण को समाप्त कर वे महिलाओ को सम्ममनीय जीवन प्रदान करना चाहते थे। व एक समतामूलक समाज की स्थापना के पक्षधर थे।

डॉ अम्बेडकर ने अपनी विभिन्न सभाओं सम्मेलनो आन्दोलनो आदि के माध्यम से सदैव ही महिलाओ को शिक्षा स्वच्छता व आत्मनिर्भर होने के लिए प्रेरित किया। अपने समाचार पत्रो मूकनायकं 1920 व बहिस्कृत भारत 1921 में महीला शिक्षा के महत्व के बारे में लिखा। बाम्बे विघान परिषद के सदस्य के सदस्य के मातृत्व लाभ विधेयक और जन्म नियन्त्रण पर उनकी बहस महिलाओं की गरिमा को पहचानने के लिए काफी है।

डॉ अम्बेडकर ने संविधानिक उपायो और हिन्दू कोड बिल के माघ्यम से भारतीय महिलाओ की स्थिती सुधारने का प्रयास किया। उनके अनुसार महिलाओ की स्थिती सुधारने के लिए आवश्यक हैं कि हिन्दू परिवार और हिन्दू समाज में सुधार करना।

डॉ अम्बेडकर ने समाज में महिलाओ की स्थिति को सुधारने के लिए 1948 में हिन्दू कोड बिल प्रस्तुत किया।5

इसके मुख्य बिन्दु इस प्रकार है––

1तलाक स्वाकृति

2 क्षेत्रिय नियमों से हटकर सभी हिन्दुओ के लिए सम्पत्ति के स्वामित्व की एक संयुक्त परिवार प्रणाली की स्थापना।

3 पुत्रियो के लिए उत्तराधिकार के हिस्से का बॅटवारा, विधवा विवाह

4 गोद लेने के नियमो में परिवर्तन

इस बिल के द्वारा डॉ अम्बेडकर विवाह तलाक गोद प्रकरण नाबालिक और वारिस संयुक्त परिवार सम्पत्ति उतराधिकार और महिला सम्पत्ति सम्बन्धी कानूनो में परिवर्तन लाना चाहते थे।5 इस बिल के माध्यम से डॉ अम्बेडकर पुत्री,पत्नी व मॉ को सम्पत्ति में अधिकार दिलाना चाहते थे।

लेकिन बिल पेश होते ही काग्रेंस और विपक्षी दलो द्वारा इसका विरोध शुरु हो गया। इसको हिन्दू संस्कृति ,परम्परा और रीति रिवाज को नष्ट करने वाला बताया गया। चार वर्ष की लम्बी बहस के बाद 1951 में यह बिल पास न होने के कारण डॉ अम्बेडकर ने अपने पद से त्यागपत्र दे दिया। यह डॉ अम्बेडकर का एक संवैधानिक प्रयास रहा जो महिलाओ को सम्पत्ति में अधिकार दिलाने में सफल नही रहा।

स्वतन्त्रन्ता केपश्चातएक समतातमूलक समाज की स्थापना व स्त्रियों को समानता स्वतन्त्रता व सुरक्षा प्रदान करने हेतु संविधान में अनेक प्रावधान किये गये हैजैस–

अनेक अधिनियम पारित किये गये है–

1 हिन्दू विवाह अधिनियम 1955

2 हिन्दू गोद लेने व रखरखाव अधिनियम 1956

3 हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम 1956

4 अनैतिक व्यापार निवारण अधिनियम 1956

5 गर्भ का चिकित्सकीय समापन अधिनियम 1971

6 घरेलू हिंसा से महिला संरक्षण अधिनियम

7 दहेज निषेद्व अधिनियम 1961

8 मातृत्व लाभ अधिनियमआदि

संविधान मेंअनुच्छेद 14 मे कानूनी समानता,अनुच्छेद 15– 3 में जाति,धर्म,लिंग एंव जन्म स्थान के आधार पर भेदभाव के निषेद्व,अनुच्छेद 16 में अवसर की समानता ,अनुच्छेद19– 1 अभिव्यक्ति की समान स्वतन्त्रता,अनुच्छेद 21,अनुच्छेद 23–24,अनुच्छेद 25–28,अनुच्छेद 29–30,अनुच्छेद 32,अनुच्छेद 39 घ समान कार्य के लिए समान वेतन,अनुच्छेद 40 पंचायती राज्य संस्थाओं में आरक्षण,अनुच्छेद 41,अनुच्छेद 42 प्रसूति सहायता,अनुच्छेद 47पोषाहार जीवन स्तर व लोक सेवा में सुधार करना सरकार का दायित्व,अनुच्छेद 332 क राज्य विधान सभओ में आरक्षण की व्यवस्था,अनुच्छेद 243 आदि हैं। 2005 में संसद ने हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम 1956 की धारा 6 में संशोधन कर बेटियों को भी संम्पति में अधिकार प्रदान लैंगिग असमानता को समाप्त किया गया। 6

इस प्रकार अन्य अनेक कानून व भारतीय दंड संहिता में अनेक धारायें हैं। जो महिलाओं को विभिन्न प्रकार के सामाजिक आर्थिक राजनीतिक व सुरक्षात्मक अधिकार व स्वतंन्त्रतायें प्रदान कर,न केवल लैंगिग असमानता को दूर करने का प्रयास किया गया है बल्कि सम्मानपूर्वक जीवन जीने योग्य परिस्थितियो का निर्माण किया गया हैं।

डॉ अम्बेडकर का मानना था कि स्त्रियों के आर्थिक उत्थान एंव राष्ट्रीय आर्थिक विकास में भागीदारी के लिए नारी शक्ति का संगठन आवश्यक है। जब स्त्रियां आत्म विकास व आत्म उन्नति के अवसर प्राप्त करेगी तो वह परिवार की उर्जा और पुरुष के पराक्रम की प्रणेता बनेगी। इसीलिए डॉ अम्बेडकर ने संविधान सभा में हिन्दू कोड बिल के माध्यम से स्त्रियो के आर्थिक अधिकारो की पैरवी की जिसके बिना सभी प्रकार के अधिकार व स्वतंन्त्रतायें निरर्थक हैं।

निष्कर्षत एक दलित बालक के लिए इतना आसान नहीं था सदियों पुरानी प्रथाओं व कानूनो को तोडकर एक भेदभाव रहित समतामूलक समाज की स्थापना करना और महिलाओ को

पुरुषो के समान अधिकार प्रदान कर उन्हें सशक्त बनाना। वर्तमान समय में अनेक ऐसे कानून व नियम है जो महिलाओ को विभिन्न अधिकार स्वतन्त्रता व सुरक्षा प्रदान करते हैं लेकिन अभी भी बहुत कुछ किया जाना बाकी हैं। डॉ अम्बेडकर ने अपने अथक व कठिन प्रयासो से ही न केवल महिलाओ को बल्कि अस्पृश्यो,श्रमिको आदिवासीयो को भी समाज में उचित स्थान दिलाया और न्यायपूर्ण समाज की स्थापना की।

सन्दर्भ सूची––

1. सम्पूर्ण वाड्मय भाग 1 पृ 330–332 डॉ अम्बेडकर प्रतिष्ठान,कल्याण मंन्त्रालय भारत सरकार नई दिल्ली।
2. सम्पूर्ण वाड्मय भाग 7 पृ 178
3. भाटिया के ए,चौधरी रेखा, डॉ अम्बेडकर का सामाजिक न्याय पृ 200
4. राउत डी डी, नारी उत्थान के आन्दोलन के अग्रदूत डॉ अम्बेडकर विधायनी 6––4 पृ 72–73,1979
5. कीर धनंजय लाइफ एण्ड मिशन, पॉपुलर पबलिकेशनबम्बई 1991 पृ 396
6. hi.wikipedia.org/wiki/ हिन्दू उत्ताधिकार संशोधन अधिनियम 2005

लैगिंक समानता और युवा विकास

डॉ. प्रतिमा श्रीवास्तव
प्रवक्ता, समाजशास्त्र
सुधाकर महिला पी.जी. कॉलेज,
खजुरी, पाण्डेयपुर, वाराणसी

महिलाओं का आर्थिक सशक्तिकरण समावेशी आर्थिक विकास के केन्द्र में है और सतत् विकास लक्ष्यों (एसडीजीज) को हासिल करने के लिये महत्वपूर्ण है। दुनिया की प्रत्येक महिला और बालिका की समानता सुनिश्चित करने वाले परिवर्तनकारी उपायों को एसडीजीज ऐतिहासिक मंच प्रदान करते है। महिलाओं के आर्थिक सशक्तिकरण हेतु निवेश करने से लैगिक समानता, गरीबी उन्मूलन और समावेशी आर्थिक वृद्धि का मार्ग प्रशस्त होता है। लेकिन अर्थव्यवस्था में महिलाओं और बालिकाओं को समाहित करने और कार्यस्थलों एवं सार्वजनिक स्थानों को सुरक्षित बनाने के साथ–साथ महिलाओं और बालिकाओं के साथ होने वाली हिंसा को रोकने की भी जरुरत है। साथही समाज में उनकीपूर्ण भागीदारी और उनके स्वस्थ एवं सम्पन्नता पर भी ध्यान देने की आवश्यकता है।

भारत में युवाओं की संख्या बहुत अधिक है हर तीन में एक युवा है, अर्थात् 15 से 24 वर्ष के बीच और देश में की जनसंख्या में बच्चों की संख्या 37 के करीब है। 2020 तक देश की औसत आयु 29 वर्ष होगी। भारत की आर्थिक वृद्धि की सम्भावनायें और एसडीजीज की उपलब्धियां बहुत हद तक इस बात पर निर्भर करती है कि युवाओं में कौशल, ऊर्जा और सफलता की कितनी इच्छा है तथा क्या नेतृत्व, भागीदारी और स्वेच्छा को पोषित करने वाली प्रक्रियायें उपलब्ध है। एसडीजीज के 169 उद्देश्यों में से 65 में स्पष्ट रुप से युवाओं का उल्लेख है और ये उद्देश्य सशक्तिकरण, भागीदारिता और जनकल्याण पर केन्द्रित है। उचित अवसर मिलने पर युवा वर्ग देश का सामाजिक और आर्थिक भाग्य बदल सकता है। लेकिन इस परिवर्तन के लिये सतत् निवेश और भागीदारी की जरुरत है, साथ ही युवाओं के स्वास्थ्य शिक्षा और रोजगार से सम्बन्धित मुद्दों पर व्यापक रुप से काम करना भी। महिलाये एक हिंसा मुक्त परिवेश में सम्मानपूर्वक जीवन जी सके, इसके लिये उन्हें सहयोग देते के साथ–साथ उनका आर्थिक सशक्तिकरण भी जरुरी है। बाल लिंगानुपात में गिरावट पक्षपातपूर्ण तरीके से लिंग चयन की परम्परा और बाल विवाह, इस सभी से स्पष्ट होता है कि लैगिंक भेदभाव और असमानता किस हद तक भारत के लिये एक चुनौती बनी हुयी है महिलाओं के साथ घरेलू हिंसा की घटनाये भी बहुत तेजी से होती है, विशिष्ट अल्पसंख्यकों समूहों की महिलायें अपने जीवनसाथियों की हिंसा का सर्वाधिक सामना करती है। पिछले 10 वर्षों में भारत में महिलाओं के खिलाफ घरेलू हिंसा, देश का सबसे अधिक हिंसक अपराध रहा है। चूंकि हर 5 मिनट में घरेलू हिंसा की एक घटना दर्ज होती हैं।

किसी भी समाज का युवा वर्ग ऐसा दृष्टिकोण, प्रभाव कौशल और आचरण विकसित कर सकता है जा सूचनाओं और सेवाओं को सुरक्षित, स्वस्थ रखने की मांग करे, भेदभाव और हिंसा समाप्त हो, विशेष रुप से बालिकाओं के खिलाफ और ऐसा नागरिक समाज तैयार हो जिसका परिवेश

सभी को समान रुप दक्षता हासिल करने का मौका दें। ऐसी नीतियां बनाने और आचरण विकसित करने में उन्हें भागीदार बनाया जाना चाहिए जिसमें सभी लिंगो को मान्यता मिले और लैगिंक रुढ़ियों और मानदण्डों को चुनौती दी जा सकें।

सरकार के कार्यक्रम :–

सरकार द्वारा महिलाओं के खिलाफ हिंसा को समाप्त करने की अपनी प्राथमिकता बनाया है। साथ ही उनकी तस्करी, घरेलू हिंसा तथा यौन शोषण रोकने के लिये विशेष उपाय किये हैं। नीतिगत कार्यक्रमों में लैगिकता को प्रस्तावित और एकीकृत करने के लिए प्रयास भी किये गये हैं। जनवरी 2013 में बालिकाओं का संरक्षण और सशक्तिकरण करने वाले अभियान 'बेटी बचाओ बेटी पढ़ाओ' अभियान की शुरुआत की गयी, जिसे राष्ट्रीय स्तर पर संचालित किया जा रहा है। वित्त पोषण सेवाओं के साथ महिलाओं की दक्षता और रोजगार कार्यक्रम देश के कोने–कोने में सुविधाओं से वंचित ग्रामीण महिलाओं तक पहुॅच रहे है। यौन शोषण, घरेलू हिंसा और असमान पारिश्रमिक से सम्बन्धित कानूनों को भी मजबूती दी जा रही है।

राष्ट्रीय युवा नीति 2014 :–

इस नीति में 5 सुपरिभाषित उद्देश्यों और 11 प्राथमिक क्षेत्रों की पहचान की गयी है तथा इसमें प्रत्येक के लिये नीतिगत हस्तक्षेप का सुझाव है, प्राथमिक क्षेत्रों में शिक्षा, दक्षता विकास और रोजगार, उद्यमिता, स्वस्थ और स्वस्थ जीवन–शैली खेल सामाजिक मूल्यों का प्रचार, सामुदायिक भागीदारी, राजनीति और प्रशासन में भागीदारी, युवाओं का जुड़ाव समावेश और सामाजिक न्याय शामिल है। सरकार ने रोजगार बाजार में पूर्ण भागीदारी और रोजगार सेवाओं की उपलब्धता हासिल करने के लिये युवाओं को सक्षम बनाने की पहल की है। सरकार ने रोजगार बाजार में पूर्ण भागीदारी और रोजगार सेवाओं की उपलब्धता हासिल करने के लिये युवाओं को सक्षम बनाने की पहल की है। सरकार ने ग्रामीण युवाओं के क्षमता निर्माण के लिये दक्षता विकास कार्यक्रम शुरु किये हैं। गरीबी रेखा से नीचे जीवनयापन करने वाले तथा अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित जनजातियों के अन्तर्गत आने वाले युवाओं के लिये। स्वास्थ सम्बन्धी मुद्दों, शारीरिक विकास, डिजिटल समावेश, किशोर अपराध और बाल अपराध, नशीली दवाओं के दुरुपयोग, युवतियों के प्रति भेदभाव और अन्य युवा–विशिष्ट विषयों पर कार्य करने के प्रयास किये गये हैं।

संयुक्त राष्ट्र का सहयोग :–

लैगिंक समानता पर प्राथमिक समूह (यूएन विमेन द्वारा संचालित) निम्नलिखित के माध्यम से लैंगिक समानता पर संयुक्त राष्ट्र के प्रभाव को मजबूत करता है (1) लैंगिक समानता के मुद्दों पर जानकारी को व्यापक करना। (2) साझा प्रोग्रामिंग, जनसमर्थन जुटाना शोध और संवाद। (3) अन्तर सरकारी प्लेटफार्म्स के जरिये लैगिंक समानता के लिये संयुक्त राष्ट्र को साझा सहयोग को समर्थन देना और उसका निरीक्षण करना, ये प्लेटफार्म है। 2015 के उपरान्त कार्यसूचि, बीजिंग + 20, महिलाओं की स्थिति पर गठित आयोग और संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद प्रस्ताव 1325.

पक्षपातपूर्ण लिंग चयन पर केन्द्रित उपसमूह, जिसमें यूएन विमेन, यूनिसेफ, यूएनडीपी और यूएनएफपीय शामिल है। इसका उद्वेश्य लिंग चयन और बाल विवाह के खिलाफ किये जाने वाले कार्य को समर्थन देना है।

इसके लिए जनसमर्थन अभियान चलाये जा रहे है जैसे He for she और लिंग पर आधारित हिंसा के खिलाफ 16 दिनो का एक्टिविज्म (प्रत्येक वर्ष 25 नवम्बर से 10 दिसम्बर तक) मार्च 2016 में अंतरराष्ट्रीय महिला दिवस पर साझा संयुक्त राष्ट्र संवाद और जनसमर्थन अभियान शुरू किया गया। संयुक्त राष्ट्र ने नीति आयोग और My Gov के साथ मिलकर पहला Womens Transforming India अभियान शुरू किया। इस आनलारन अभियान में देश भर की महिलाओं की लगभग 1000 प्रेरणादायी आपबीतियॉ प्राप्त हुयी। इनमें से 12 उत्कृष्ट महिलाओं को चुना गया, जो देश में उल्लेखनीय परिवर्तन कर रही है।

विमेन ट्रान्सफॉर्मिंग इण्डिया 2017 :–

- यूएनएफपीए और उसके साझेदारों ने किकस्टार्ट इक्वालिटी कैंपेन के जरिये 200 विद्यार्थियों को जोङा तथा यूथ की आवाज की साझेदारी में पुराने और लङको को सलग्न करने वाला एक आनलाइन अभियान चलाया गया।
- सांख्यिकी एवं कार्यक्रम कार्यान्वयन मंत्रालय और महिला एवं बाल विकास मंत्रालय की सलाह पर लिंग पर आधारित सांख्यिकी में डेटा गैप्स को दूर करने के लिये फ्रेम वर्क बनाया गया, जिसने तीनो क्षेत्रो का विश्लेषण किया। महिलाओं के समय का सदुपयोग, परिसम्पत्ति का स्वामित्व और महिलाओं से होने वाली हिंसा की व्यापकता ।
- संयुक्त राष्ट्र के स्वयंसेवियों ने युवा मामले एवं खेल मंत्रालय के सहयोग से एक राष्ट्रीय बैठक का आयोजन किया। जिससे राष्ट्रीय युवा नीति के कार्यान्वयन के लिए इनपुट्स दिये जा सके। इस बैठक में समावेश , सामाजिक उधमशीलता पर्यावरण और आपदा प्रबन्धन , लैगिंक न्याय और समानता पर युवाओं और तकनीकी विशेषज्ञों ने चर्चा की।
- यूएनएफपीए और यूएनवी ने गणतंत्र दिवस पर युवा लङके और लङकियों के लिए यूथ अड्डा का आयोजन किया। इसका उद्देश्य युवाओं में राजनीतिक समझदारी विकसित करना।
- आरकेएसके में यह परिकल्पना की गयी की भारत में सभी किशोरो–किशोरियों को अपने स्वास्थ्य और कल्याण से सम्बन्धित सूचना पर और जिम्मेदारी पूर्ण फैसले लेने का हक मिले और उन्हे पूर्ण क्षमता की अनूभूति हो।
- भारत में यूएन ने गुवाहटी में हिक्स युवा वार्ता और उसके कार्यवाही सम्बन्धी आहवान के लिये युवा मामलों के मंत्रालय को तकनीकी सहयोग दिया। वार्ता का शीर्षक था, यूथ एज ब्रिज फॉर इंट्रा ब्रिक्स एक्सचेंज दसके चार सत्र् दक्षता विकास और उद्यमशीलता सामाजिक समावेश, युवाओं में स्वंयसेर्विता और शासन प्रणाली में युवा भागीदारिता जैसे विषयों पर आधारित थे।

लैगिंक समानता के प्रयास :–

- समाज की मानसिकता में धीरे–धीरे परिवर्तन आ रहा है, जिसके परिणाम स्वस्थ्य महिलाओं से सम्बन्धित मुद्वों पर गम्भीरता से विमर्श किया जा रहा है। तीन तलाक, हाजी अलि दरगाह में प्रवेश जैसे मुद्वों पर सरकार तथा न्यायालय की सक्रियता के कारण महिलाओं को उनके अधिकार प्रदान करना।

- वैश्विक लैंगिक अंतराल सूचकांक– 2020 के राजनीतिक सशक्तिकरण और भागीदरी मानक पर अन्य बिन्दुओं की अपेक्षा भारत को 18 वॉ स्थान प्राप्त हुआ। मंत्रिमंडल में महिलाओं की भागीदारी पहले से बढकर 23% हो गयी तथा भारत विश्व में 69वें स्थान पर है।
- भारत ने मैक्सिको कार्ययोजना (1975) नैरोबी अग्रदर्शी रणनीतियॉ (1985) और लैंगिक समानता तथा विकास एवं शान्ति पर संयुक्त राष्ट्र महासभा सत्र् द्वारा 21वीं शताब्दी के लिए अंगीकृत ''बीजिंग डिक्लरेशन एण्ड प्लेटफार्म फार एक्शन को कार्यान्वित करने के लिये और कार्यवाहिया एवं पहले '' जैसी लैगिक समानता की वैश्विक पहलों की अभिपुष्टि की है।
- ''वन स्टाप सेन्टर योजना'' महिला हेल्पलाईन योजना '' और '' महिला शक्ति केन्द्र जैसी योजनाओं के माध्यम से महिला सशक्तिकरण का प्रयास किया जा रहा है। इन योजनाओं के कियान्वयन के परिणाम स्वस्थ्य लिंगानुपात और लडकियों के शैक्षिक नामांकन में प्रगति देखी जा रही है।
- आर्थिक क्षेत्र में आत्मनिर्भरता हेतु मुद्रा और अन्य महिला केन्द्रित योजनाये चलायी जा रही है।
- लैगिंक समानता के लिये कानूनी कार्यवाहियों के अतिरिक्त किसी देश के बजट में महिला सशक्तिकरण तथा शिशु कल्याण के लिये किये जाने वाले धन आवंटन के उल्लेख को जेंडर बजटिंग कहा जाता है। इसके जरिये सरकारी योजनाओं का लाभ महिलाओं तक पहुॅचाया जाता है।
- लैगिंक समानता का सूत्र श्रम सुधारों और सामाजिक सुरक्षा कानून से भी जुड़ा है, फिर चाहे कामकाजी महिलाओं के लिये समान वेतन सुनिश्चित करना हो या सुरक्षित नौकरी की गारन्टी देना। मातृत्व अवकाश के जो कानून सरकारी क्षेत्र में लागू है, उन्हें निजी और असंगठित क्षेत्र में सख्ती से लागू करना होगा। जेंडर बजटिंग और सामाजिक सुधारों के एकीकृत प्रयास से ही भारत में लैगिंक समानता लायी जा सकती है।

वैश्विक विकास के लिये लैगिंक समानता को बनाये रखना आवश्यक है। सितम्बर 2015 में संयुक्त राष्ट्र महासभा की उच्चस्तरीय बैठक में एजेंडा 2030 क अन्तर्गत 17 सतत् विकास के लक्ष्यों को रखा गया है, जिसे भारत सहित 193 देशों ने स्वीकार किया है। इन लक्ष्यों में लैगिंक समानता भी शामिल है। लैगिंक समानता के आधार पर ही एक सुन्दर और सुरक्षित समाज की नींव डाली जा सकती है और इसी पर विकासरुपी इमारत बनायी जा सकती है।

सन्दर्भ :–

1. मोती रानी पुष्पा – महिला विकास की नई दिशाये।
2. श्रीवास्तव सुधा रानी – भारत में महिलाओं की वैधानिक स्थिति
3. डॉ. आशुरानी – महिला विकास कार्यक्रम
4. डॉ. अमिता सिंह – लिंग एवं समाज

भारतीय लोकतन्त्र एवं साम्प्रदायिकता

डॉ. बृजेश पाण्डेय
असिस्टेन्ट प्रोफेसर
श्री अ.क.पी.जी. कॉलेज, वाराणसी

200 वर्षों से भी लम्बे साम्राज्यवादी, औपनिवेशिक शासन व लम्बे संघर्ष के पश्चात भारत 15 अगस्त 1947 को स्वतंत्र हुआ। हमने अपने संविधान को 26 जनवरी 1950 से प्रत्यावर्तित किया। जिसके साथ ही. भारत विश्व के सबसे बड़े लोकतान्त्रिक गणराज्य के रुप में अन्तर्राष्ट्रीय पटल पर उभर कर आया। संविधान के माध्यम से देशवासियों को अनेक सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक अधिकार प्राप्त हुए। लम्बे समय से उपेक्षित, शोषित व समाज की मुख्य धारा से कटे हुए लोगों के पुनःउद्धार व विकास के लिए कई उपबन्ध एवं योजनाएं स्वीकृत की गयी। तब से वर्तमान तक भारतीय लोकतंत्र ने सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक क्षेत्र में अनेक उपलब्धियॉ हासिल की हैं। लेकिन आज हमारी लोकतांत्रिक व्यवस्था अनेक आन्तरिक एवं वाह्य चुनौतियों जैसे की व्यवस्था का निरंतर क्षरण, उभरते असंतोष, समाज में बढ़ती हिंसा व बेचैनी की भावना, असुरक्षा का भाव, अलगाववादी प्रवृत्तियाँ, सत्ता, राजनीति के घिनौने खेल इत्यादि से जूझ रही है। निरंतर टूटते हुए लोकतान्त्रिक मानकों एवं मूल्यों ने व्यवस्था के अस्तित्व पर ही प्रश्न चिन्ह लगा दिया है। संघर्षों के निवारक अभिकर्ता के रुप में राजसत्ता की विफलता एवं राजनीतिक प्रक्रिया में जनसामान्य का टूटता विश्वास, दोनों ने ही एक तरफ तो राजनीतिक अस्थिरता को जन्म दिया तो दूसरी तरफ सामाजिक ढाँचे के बिखराव की पृष्ठिभूमि भी तैयार की है। दोष केवल व्यवस्था का नहीं है अपितु व्यवस्था के संचालक कहीं ज्यादा दोषी हैं। यही कारण है कि आज हमारी व्यवस्था अनेक तनावों एवं व्याधियों जैसे कि साम्राज्यवाद, जातिय हिंसा, क्षेत्रवाद, आतंकवाद, कृषि एवं उद्योगों में असंतोष, भष्टाचार, राजनीति का अपराधीकरण, अपराध एवं हिंसा के बीच झुलस रही है।

आज हमारा समाज व हमारी व्यवस्था जिन तनावों का दंश झेल रही है। साम्प्रदायिकता सम्भवतः इनमें से सबसे बड़ी चुनौती है। साम्प्रदायिकता की समस्या ने भारतीय राजव्यवस्था के क्रियान्वयन को बुरी तरह प्रभावित किया है, हलांकि, साम्प्रदायिकता या साम्प्रदायिक संघर्ष की प्रवृत्ति भारतीय समाज की कोई नवीन प्रवृत्ति नहीं है, क्योंकि इसकी नींव तो ब्रिटिश राज की 'फूट डालो और शासन करो' से ही पड़ गयी थी। समय के साथ इसकी गहनता बढ़ती गयी और वर्तमान में एक विकराल समस्या का रुप धारण कर लिया है। आज हम 'विविधता में एकता' के चाहें जितने नारे लगायें लेकिन एक कटु सत्य यह भी है कि देश में विभिन्न समुदायों के बीच जो सांस्कृतिक–धार्मिक विभिन्नताए हैं उन्होनें इन समुदायों को किसी सामाजिक एकरसता पर पहुॅचने ही नहीं दिया। बंग भंग, मुस्लिम लीग का निर्माण, पृथक निर्वाचन प्रणाली ब्रिटिश राज की कुछ ऐसी कुटिल चालें थीं जिन्हें स्वतंत्रता संग्राम की शक्ति एवं एकता को नष्ट करने के लिए अपनाया गया था। जिसके प्रतिफल के रुप में इस महाद्वीप में विभाजन का दंश झेला था। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात भारत ने 'धर्मनिरपेक्षता' के सि़द्धान्त को अपनाया, ताकि लोकतान्त्रिक व्यवस्था का संचालन स्वतः स्फूर्त तरीके

से होता रहे और देश के सभी समुदाय अपनी–अपनी धार्मिक आस्था व विश्वासों का निर्बाधरुप से पालन करते रहें किन्तु आज इसी धर्म निरपेक्षता के सिद्धान्त पर साम्प्रदायिक दंगो व साम्प्रदायिक हिंसा ने प्रश्न चिन्ह लगा दिया है।

धर्म समग्ररुप से व्यक्तिगत आस्था का प्रश्न है। कुरान में निहित विचार 'लुकमदीन–कुम् बली दीनी' (तुम्हारे लिए तुम्हारा धर्म और मेरे लिये मेरा धर्म) जो कि धर्म के मूलरुप को समझने में हमारी सहायता करता है। रीलिजन जो कि धर्म का पर्याय है का अर्थ सम्बन्ध स्थापित करना है यह सम्बन्ध दो प्रकार का होता है। प्रथम मनुष्य का ईश्वर के बीच, द्वितीय मनुष्य व मनुष्य के बीच इस प्रकार सभी धर्म किसी न किसी रुप में ईश्वर से जुड़े होने के साथ–साथ मानव कल्याण व परस्पर सौहार्द तथा सद्भावना की भावना पर जोर देते हैं। हिन्दू धर्म के विषय में गॉधी जी ने स्पष्ट किया है कि 'सनातन वह है जो सनातन धर्म का पालन करता है' इस्लाम का अर्थ भी ईश्वर के प्रति समर्पण व उसके कानूनों का अनुपालन करना है अर्थात सभी धर्म अपने अनुयायियों को सामाजिक समन्वय व सद्भाव की शिक्षा देते हैं। उन्हें एक अधोप्राकृतिक शक्ति की ओर उन्मुख करते हैं। परन्तु सामान्यतः व्यक्ति धर्म के वाह्य स्वरुप पर ही विचार करता है और धर्म व कर्तव्य के मर्म को भुला देता है। इस प्रकार की उथली धर्म मिमांसा ही धर्मों में भिन्नता के बोध का कारण होती है। जो समाज में वैमनस्यता, साम्प्रदायिक हिंसा व तनाव को जन्म देती है।

राष्ट्र की सांस्कृतिक, भाषाई एवं धार्मिक विविधताओं के चलते लोकतांत्रिक शासन प्रणाली को अपनाने के कारण भारतीय संविधान में धर्मनिरपेक्षता के सिद्धान्त को अपनाया गया और अनुच्छेद 25 से 28 तक नागरिकों की धार्मिक स्वतंत्रता व अधिकारों के संरक्षण की व्यवस्था की गयी, ताकि प्रत्येक व्यक्ति स्वतंत्र रुप से अपने धार्मिक कार्यों का सम्पादन कर सके, परन्तु जब यही धार्मिक आस्था, धार्मिक विश्वास एवं धार्मिक मूल्य एक सम्प्रदाय विशेष के लोगों में अलगाव की भावना, अन्य धर्म सम्प्रदायों के प्रति शत्रुता के भाव को जन्म देने लगे तो यही भावना साम्प्रदायिकता का रुप ग्रहण कर लेती है। साम्प्रदायिकता की यह भावना दिन प्रतिदिन गंभीर होती जा रही है आज से डेढ़ दो दशक पहले तक साम्प्रदायिक दंगों की समस्या से जूझते हुए हम साम्प्रदायिकता को बहुत हद तक स्थानिय सामाजिक, आर्थिक घटना ही मानते थे और हमें विश्वास था कि हम जिस प्रकार साम्प्रदायिकता की व्यापकता और जटिलता को समझ और सीख रहें हैं, उसके कारण उस पर काफी हद तक निकट भविष्य में काबू पाया जा सकेगा और समस्या का यह क्षेत्र भी धीरे–धीरे बिलुप्त हो जायेगा। आजादी के चार दशकों तक हिन्दू–मुस्लिम साम्प्रदायिक तत्व जिस तरह हाशिये पर रहे, उसके कारण यह विश्वास और मजबूत था। दंगों के बीच भी इस प्रकार का भय व आशंका लगभग नहीं थी कि स्थितियॉ इस हद तक जटिल हो जायेगी। फरवरी 2002 को गुजरात दंगों में जो नवीन प्रवृत्तियॉ देखने को मिली उसने भविष्य में समस्या के विभत्स रुप की ओर इशारा किया। साम्प्रदायिक दंगो के नाम पर स्वतंत्रा प्राप्ति के बाद से ही देश ने हृदयविदारक दृश्य देखे हैं, जिसमें लूटपाट, आगजनी, निर्दोष लोगों का कत्ल, करोडों की राष्ट्रीय सम्पत्ति की हानि जैसे दृश्य आम है। 28 फरवरी की दोपहर से हिंसा का जो ताण्डव अहमदाबाद से शुरु हुआ व करीब तीन महिने तक गुजरात के 151 शहरों, 993 गॉवों, 154 निर्वाचन क्षेत्रों तथा 284 थाना क्षेत्रों में अपना विभत्स रुप दिखलाता रहा। इतिहास के विश्लेषण से स्पष्ट है कि इसके पूर्व तक दंगों के केन्द्र नगरीय क्षेत्र ही

हुआ करते थे। इसके अतिरिक्त राजनेताओं खुले रुप में दंगों में शामिल होना आने वाले कठिन समय की दस्तक है।

साम्प्रदायिक हिंसा एवं दंगों के कारण के रुप में कई सामाजिक–आर्थिक व राजनैतिक प्रवृत्तियॉ काम करती हैं किन्तु धार्मिक मुद्दों की पक्षपात पूर्ण व्याख्या इस समस्या की जड़ है। जनता के सन्मुख अनेक ऐसे संगठन आ जाते हैं जो धर्म विशेष के संरक्षक बनते हैं तथा उन्माद को प्रसारित करते हैं ये केवल धर्म के संकीर्णतावादी विचारों से निर्मित होते हैं इन्हें गहन धार्मिक मूल्यों से कोई सरोकार नहीं होगा। इन संगठनों के द्वारा छोटी–छोटी बातों जैसे मस्जिद के सामने संगीत बजाना, किसी मुस्लिम पर रंग गिर जाना, गोवध, राजनीतिक सभा पर पथराव इत्यादि को तुरन्त साम्प्रदायिक रंग दे दिया जाता है। जिसकी परिणति साम्प्रदायिक हिंसा के रुप में होती है।

आर्थिक विकास की मंद गति व असमानता ने भी इस समस्या की गहनता को बढ़ाने में अपनी महती भूमिका का निर्वाह किया है। तीब्रगति से बढ़ती जनसंख्या के साथ–साथ लोगों की जरुरतें एव ंअपेक्षाए तेजी से बढ़ी हैं किन्तु संसाधनों की कमी के कारण बाजार की प्रतिस्पर्धा जो कि बिशुद्ध से आर्थिक समस्या, इसमें अगर दो सम्प्रदाय आमने–सामने की स्थिति में आ जाते है तो स्वतः ही यह साम्प्रदायिक संघर्ष में परिवर्तित हो जाती है। हमारी सरकारों की रुचि न तो रोजगार के अवसर बढ़ाने में है, न ही संसाधनों के समुचित वितरण में। यही कारण है कि कई बार दो सम्प्रदायों के बीच आर्थिक प्रतिस्पर्धा ही साम्प्रदायिक संघर्ष का रुप ग्रहण कर लेती हैं।

लेकिन इस समस्या का सबसे बड़ा कारण राजनीति है। देश के राजनीतिक वातावरण ने स्वतः ही राजनेताओं के हाथ में धर्मों से खिलवाड़ परिस्थतियॉ उपलब्ध करा दी है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद हमने संघात्मक संसदीय लोकतंत्र के माडल को अपनी राज्य व्यवस्था के रुप में चुना। वयस्क मताधिकार पर आधारित लोकतांत्रिक शासन प्रणाली ने समाज के सभी वर्गो में राजनीतिक चेतना प्रसार किया। हमारे समाज का ढॉचा धर्म, जाति, सम्प्रदाय, भाषा, नस्ल, क्षेत्र आदि पर आधारित बहुलवादी प्रकृति का है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद से सभी समूह अपनी मॉगों एवं हितों की पूर्ति के प्रति और भी अधिक जागरुक हुए। परिवर्तित वातावरण में उन्हें अपनी मॉगों को उठाने एवं राजव्यवस्था के सम्मुख रखने के कई मार्ग प्रदान किए। जिसका परिणाम अक्सर इन समूहों के संघर्ष के रुप में हमारे सामने आता है। सामाजिक आर्थिक परिवर्तनों की प्रक्रियाएं, संसाधनों की सीमितता नितियों के दोषपूर्ण क्रियान्वयन एवं सत्यनिष्ठ राजनीतिक इच्छा के अभाव के कारण जहॉ एक तरफ कुछ समूह लाभान्वित हुए तो कुछ समूह उपेक्षित ही रहे और इन समूहों में विलगाव की प्रवत्ति कई अन्य सामाजिक सांस्क्तिक चरों के साथ मिलकर साम्प्रदायिकता जैसी विघटनकारी प्रवृत्तियों के जन्म का कारण बनी। इसी विखंण्डित वातावरण का लाभ राजनेताओं द्वारा उठाकर इस समस्या को और भी अधिक उलझा दिया जाता है। सत्ता के प्रति राजनेताओं की अंधी आसक्ति ने देश के साम्प्रदायिक सौहार्द के ताने–बाने को तहस–नहस कर दिया है। स्वयं को किसी धर्म का हितैषी एवं कर्णधार साबित करने के लिए छोटी–छोटी बातों को साम्प्रदायिक रंग दे दिया जाता है। चुनावी प्रक्रिया आम जनमानस की धार्मिक भावनाओं व संवेदनाओं को अपने हित में इस्तेमाल करने का यत्र बन चुकी है। राजनेताओं के लिए विभिन्न सम्प्रदाय महज वोट बैंक है। यद्यपि धार्मिक साम्प्रदायिक आधार पर प्रचार करना या भावनाओं को उकसाना गैरसंवैधानिक है किन्तु प्रत्याशियों के नामांकन से

लेकर चुनाव सम्पन्न होने तक समस्त प्रक्रिया का संचालन निर्वाचन क्षेत्र की साम्प्रदायिक संरचना के आधार पर किया जाता है। साम्प्रदायों के आधार पर अतिवादी सेनाओं का गठन इस समस्या का सबसे विभत्स पहलू है। कई बार पुलिस प्रशासन पर भी ऐसे लोगों को गिरफ्तार न करने के लिए राजनेताओं का दबाव होता है। ऐसी दशा में कानून व व्यवस्था की बात करना बेमानी हो जाता है। हमारे समाज का ताना–बाना बहुत ही ज्यादा ज्वलनशील हो चुका है। जिसमें एक छोटी सी चिगांरी भी आग लगाने के लिए काफी है, दुर्भाग्य से चुनावी प्रक्रिया ने विभिन्न साम्प्रदायों के बीच की दीवारों को गिराने के बजाय उन्हें और अधिक मजबूत बना दिया है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के समय हमारे राजनेताओं का विश्वास था कि आधुनिकीकरण एवं तकनीकि विकास की प्रक्रिया इस प्रकार की विघटनकारी प्रवृत्तियों की तीब्रता को कम करके उन पर अंकुश लगा सकेगी किन्तु आज का परिदृश्य बिल्कुल विपरीत ही दिखायी दे रहा है। साम्प्रदायिकता से भारतीय समाज को मुक्त करने के लिए एक स्वच्छ, स्वस्थ व व्यापक धार्मिक शिक्षा नीति को शैक्षणिक व स्वैच्छिक संस्थाओं के माध्यम से राष्ट्रीय स्तर पर क्रियान्वित करने की आवश्यकता है। हमने संसदीय लोकतंत्र का माडल तो अपनाया लेकिन उसके लिए अपेक्षित राजनीतिक, संस्कृति का निर्माण नहीं कर पाये। अतः हमें राजनीतिक–संस्कृति का निर्माण करना होगा तभी इन विधानकारी प्रवृत्तियों पर अंकुश लगेगा तथा लोकतांत्रिक व्यवस्था का सही अर्थो में संचालन सुनिश्चित हो पाएगा। आर्थिक विकास व संसाधनों के वितरण में समाज के सभी वर्गों की समुचित भागीदारी सुनिश्चित की जाए। धर्म, सम्प्रदाय के आधार पर लोगों की भावनाओं को उसकाने वाले संगठनों के विरुद्ध कड़ी कार्यवाही की जाये एवं उन पर प्रतिबन्ध लगाया जाये। समान नागरिक संहिता लागू की जाय जिसके संदर्भ में माननीय उच्चतम न्यायालय ने भी 23 जुलाई 2003 को अपना महत्वपूर्ण निर्णय सुनाया है।

संदर्भ गन्थ –

1. एस. पुरी, भारतीय राजीनतिक व्यवस्था (जालंधर : न्यू ऐकेडमिक पब्लिशिंग 2003)
2. प्रतियोगिता दर्पण (आगरा : उपकार प्रकाशन 2007)
3. हिमांशु राय, भारतीय राजनीतिक व्यवस्था (दिल्ली : पियर्सन एजुकेशन इण्डिया 2018)